श्रीसुदर्शनशतकम्

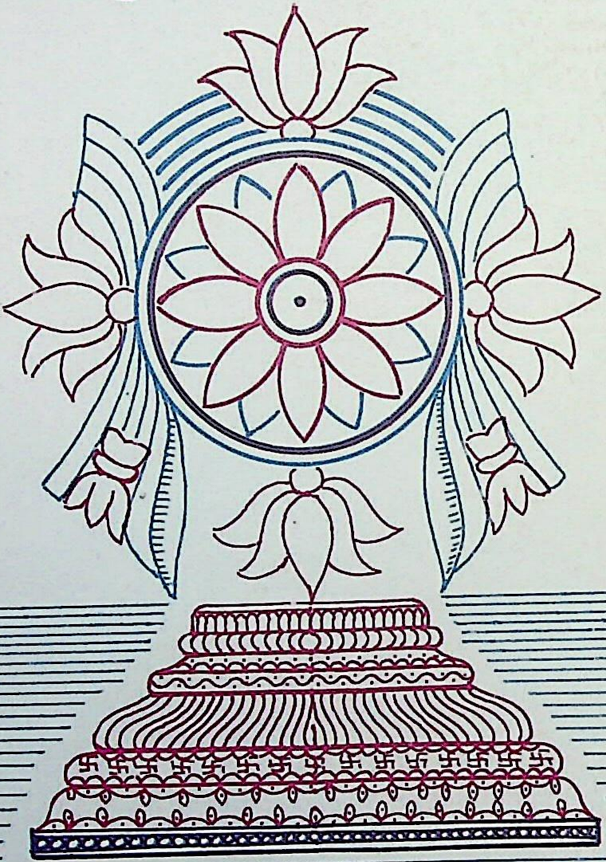

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई

श्रीमते रामानुजाय नमः

श्रीकूरनारायणमुनिविरचितम्

श्रीसुदर्शनशतकम्

सान्वयहिन्दीभाषानुवादसहितम्

तथा

विहगेन्द्रसंहितान्तर्गतम्

सुदर्शनकवचम्

अनुवादकः

दार्शनिकसार्वभौमः श्रीमद्रामानुजाचार्य-

श्रीमाधवाचार्यः

वड़गादी, बम्बई- ३

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई-४.

संस्करण : अगस्त २०१९, संवत् २०७६ ।

मूल्य : ५० रुपये मात्र ।

© सर्वाधिकार : प्रकाशक द्वारा सुरक्षित

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop: Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg,
7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.khe-shri.com
E-mail : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass
Prop. Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400004,
at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate,
Pune -411 013.

दार्शनिकसार्वभौमः श्रीमद्रामानुजाचार्य–

श्रीमाधवाचार्यः

श्रीमद्देवसुनायकाङ्घ्रिजलजच्छायासुधासंश्रितान्,
वाक्यन्यायपदानुशासननिजाधीनान् प्रसन्नाननान् ।
वेदान्तार्थविमुग्धमानसमहामत्तेभपञ्चाननान्,
वन्देतानुपमन्युपुण्यफलितान् श्रीमाधवार्याभिधान् ॥

दो शब्द

***

श्रीकूरनारायण मुनि प्रणीत यह 'सुदर्शनशतक स्तोत्र' श्रीवैष्णव सिद्धान्त एवम् वैदिक समाज के लिये एक अनुपम रत्न है। इसकी रचना एक बड़ी विपत्ति के समय श्रीरङ्गनाथ भगवान् के परम भक्त एवम् उत्कृष्ट विद्वान् श्रीरङ्ग क्षेत्र निवासी श्रीकूरनारायण मुनि द्वारा कई शताब्दियों के पूर्व की गई थी। ।

इसका पाठ एवम् अनुष्ठान अवश्य शीघ्रफलप्रद होता है। पूर्व से लेकर आज तक भक्त, आराधक, धर्म-अर्थ-काम एवम् मोक्ष की भावनाओं से इसका सफल अनुष्ठान करते चले आ रहे हैं। वस्तुतः श्रीसुदर्शनराज के महत्त्व एवम् विलक्षण चमत्कारों से सारा संस्कृत वाङ्मय भरा हुआ है। इस विषय में आस्तिकों के लिए इससे अधिक कुछ कहना सूर्य को दीपक दिखाने के सदृश होगा। हां! तो, किसी भी पुराण या स्तोत्र आदि का पाठ अर्थानुसन्धान के बिना किये जाने पर समुचित फलप्रद नहीं होता। अतः अर्थज्ञानं अत्यावश्यक वस्तु है। यह सुदर्शनशतक स्तोत्र अति कठिन और भावगम्भीर है। इसके आराधकों के द्वारा समय-समय पर "इसकी भी एक ऐसी टीका होनी चाहिए; जिससे कि इसका भावार्थ सर्वसाधारण को भी ठीक-ठीक समझ में आ सके" ऐसे शब्द श्रवण में आते हैं। यद्यपि इस पर एक-दो संस्कृत और हिन्दी टीकायें भी लोगों के दृष्टिगोचर हैं, तथापि अभी भी आकांक्षायें अशान्त देखी जाती हैं। अतः इसी दृष्टिकोण को लेकर कि,- स्तोत्र के श्लोकों के भाव संस्कृत न जानने वाले हिन्दी भाषा-भाषी भी समझ कर लाभ ले सकें, इस कारण मूल के साथ-साथ अन्वय सहित हिन्दी भाषा में समझाने का प्रयास किया गया है। यद्यपि इसमें सभी शब्दों का पूर्णतः अर्थ लाने का प्रयास तो नहीं किया गया तथापि सभी के भाव प्रायः उचित मात्रा में आ गये हैं। इस लिए प्रेमियों को इससे यदि कुछ भी लाभ हुआ तो मुझे सन्तोष होगा।

श्रीमाधवाचार्य्यः

अथ सुदर्शनमन्त्राराधनविधिः

***

अथ षडक्षर जप विधिः

ॐ अस्य श्रीसुदर्शनमहामन्त्रस्य अहिर्बुध्न्यो भगवानृषिरनुष्टुप छन्दः। श्रीसुदर्शनचक्रराजो भगवान् देवता। क्षौं महाज्वालाय बीजम्। क्लीं शत्रुमर्दनाय शक्तिः। क्लीं सर्वभयनिवारणाय कीलकम्। श्रीभगवतकैंकर्ये बाधानिवृत्तिपूर्वकमविछिन्नसन्तानेन विवृध्यर्थं षटकोणमध्यस्थितविष्णुचक्रमन्त्रजपे विनियोगः।

अथ अङ्गन्यासः

ॐ सं मूर्ध्नि, ॐ हं भ्रूमध्ये, ॐ स्रां मुखे, ॐ रं हृदि, ॐ हुं नाभौ, ॐ फट् जान्वोः (सहस्रार हुं फट् इति मन्त्रः।)

अथ करन्यासः

रां रणत्किङ्किणीजालाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। रीं रिपुदावानलाय तर्जनीभ्यां नमः। रुं राक्षसभयनिवारणाय मध्यमाभ्यां नमः। रैं रक्षौत्सादनाय अनामिकाभ्यां नमः। रौं रणभीषणाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। रः रक्तमाल्याम्बरधराय करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

अथ हृदयादिन्यासः

ॐ रां राक्षसविध्वंसकाय हृदयाय नमः। रीं रक्ताक्षाय शिरसे स्वाहा। रुं रुद्रभीषणाय शिखायै वषट्। रैं राक्षसकुलनाशनाय कवचाय हुं। रौं रमेशप्रियाय नेत्राभ्यां वौषट्। रः रक्तमाल्याम्बर-धराय अस्त्राय फट्।

अथ पञ्चोपचार पूजनम्

ॐ लं, पृथिव्यात्मने वाणासुरमदभञ्जनाय श्रीचन्दनं समर्पयामि ।।१।। हं, आकाशात्मने दैत्यदानवमर्दनाय पारिजात-पुष्पं समर्पयामि ।।२।। यं, वाय्यात्मने दुर्वासोगर्वखण्डनाय सुगन्धदशाङ्गधूपं समर्पयामि ।।३।। रं, ब्रह्मात्मने वैकुण्ठनिवासाय भक्ष्यभोज्य-लेह्य-चोष्य-गुड़-घृत-दधिक्षीरादि-शुभ्रशाल्यो-दनमोदकाद्यनेकपक्वान्न, कन्दमूलफलाद्यनेकचित्रान्न, पायस-निर्मलस्वादुविरजाजलसंयुक्त श्रीरमाहस्तनिर्मितमणिमयपात्रस्थित श्रीमहाविष्णुनिवेदितमहाप्रसादामृतान्नं समर्पयामि ।।४।। जं, सोमात्मने पूगीफलनागवल्लीदलैलालवङ्गकङ्कोलजातीफला-द्यनेकशतौषधिसहितानेक सुगन्धपरिमलद्रव्य जातीपत्र कस्तूरी-कर्पूरगोरोचनमौक्तिकचूर्णमिश्रित लक्ष्मीहस्तनिर्मित स्वर्णपात्र-स्थित श्रीधरचर्वणशेषवीटिकां समर्पयामि ।।५।।

।। इति पञ्चोपचारपूजनम् ।।

अथ दशदिग्बन्धः

ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्राय ऐन्द्रीं दिशं चक्रेण बध्नामि ।
ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्रायाग्नेयीं दिशं चक्रेण बध्नामि ।
ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्राय दक्षिणां दिशं चक्रेण बध्नामि ।
ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्राय नैर्ऋतिदिशं चक्रेण बध्नामि ।
ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्राय वारुणीं दिशं चक्रेण बध्नामि ।
ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्राय वायव्यदिशं चक्रेण बध्नामि ।
ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्राय कौवेरीं दिशं चक्रेण बध्नामि ।
ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्राय ईशानदिशं चक्रेण बध्नामि ।
ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्राय ऊर्ध्वदिशं चक्रेण बध्नामि ।
ॐ नमो भगवते ज्वालाचक्राय अधोदिशं चक्रेण बध्नामि ।

ॐ नमो भगवते कोटिसूर्यप्रकाशाय भूर्भुवः स्वरोमिति सर्व दिग्बन्धनं कुर्यात् ।। (सहस्रार हुं फट्) इति षडक्षरमष्टोत्तरशतवारं जपेत् ।। षड्लक्षात्मकः पुरश्चरणः ।। ॐ सुदर्शनाय विद्महे । हेतिराजाय धीमहि । तन्नश्चक्रः प्रचोदयात् ।। इति सुदर्शनगायत्री मन्त्रः ।।

अथ ध्यानम्

शङ्खं चक्रं च चापं परशुमसिमिषुं शूलपाशांकुशांश्च,
विभ्राणं वज्रखेटं हलमुसलगदाकुन्तमत्युग्रदंष्ट्रम् ।
ज्वालाकेशं त्रिनेत्रं ज्वलदनलनिभं हारकेयूरभूषम्,
ध्यायेत्षट्कोणसंस्थं सकलरिपुकुलप्राणसंहारचक्रम् ।।१।।

सुदर्शन महाज्वाल कोटि सूर्य समप्रभ।
अज्ञानान्धस्य मे देव विष्णोर्मार्गं प्रदर्शय ।।२।।
यस्य स्मरणमात्रेण विद्रवन्ति सुरारयः ।
सहस्रार नमस्तुभ्यं विष्णुपाणितलाश्रय ।।३।।
क्षिप्त्वा सुदर्शनं चक्रं ज्वालामालातिभीषणम् ।
सर्वरोगप्रशमनं कुरु देववराच्युत ।।४।।
सुदर्शन महाचक्र गोविन्दस्य करायुध ।
तीक्ष्णधार महावेग सूर्यकोटिसमप्रभ ।।५।।
त्रैलोक्यं रक्ष रक्ष त्वं दुष्ट दानव मर्दन ।
सुदर्शन महाज्वाल छिन्धि छिन्धि महागदम् ।।६।।
छिन्धि वातं च पित्तं च छिन्धि घोरं महाविषम् ।
रुजं दाहं च शूलं च निमिषं जालगर्दभम् ।।७।।
ये च केचिन्महोत्पाता कार्यविघ्नकराश्च नः ।
सुदर्शनस्य मन्त्रेण ग्रहा यान्तु दिशो दश ।।८।।

।। इति सुदर्शनाराधनविधिः ।।

◎ श्रीमत्सुदर्शन भगवते नमः ◎

श्रीसुदर्शनशतकम्

*****

सौदर्शन्युज्जिहाना दिशि विदिशि तिरस्कृत्य सावित्रमर्चि
र्बाह्याबाह्यान्धकारक्षतजगदगदङ्कारभूम्ना स्वधाम्ना।
दोःखर्जूदूरगर्जद्विबुधरिपुवधूकण्ठवैकल्यकल्या
ज्वाला जाज्वल्यमाना वितरतु भवतां वीप्सयाऽभीप्सितानि।।१।।

अन्वय– **बाह्याबाह्यान्धकारक्षतजगदगदंकारभूम्ना स्वधाम्ना, साचित्र-मर्चिस्तिरस्कृत्य, दिशि विदिशि उज्जिहाना दोः खर्जूदूरगर्जद्विबुधरिपुवधूकण्ठ-वैकल्पकल्या जाज्वल्यमाना सौदर्शनी ज्वाला, भवतां अभीप्सितानि वीप्सया वितरतु।।१।।**

अर्थ– जो, प्राणियों के मन के बाहर रहने वाले, विषय-वासना की प्रवृत्ति रूप तथा अन्दर के भी अज्ञान, अन्यथा ज्ञान, विपरीत ज्ञानस्वरूप अन्धकार से पीड़ित संसार को स्वस्थ करने वाले अपने प्रभावशाली तेज द्वारा सूर्य के तेज को तिरस्कृत कर के प्रत्येक दिशाओं में उदय प्राप्त करती है। एवम् जो दैत्य-दानव युद्ध की इच्छा से अपनी भुजाओं में उठी खुजलाहट के कारण सिंहनाद करते रहते हैं, उन्हें मार कर और उनकी स्त्रियों को विधवा बना कर कण्ठसूत्र आदि आभूषणों से शून्य कर के जो उनको, अमङ्गल स्वरूप प्रदान कर देती है। वह सर्वदा प्रकाशमान रहने वाली श्रीसुदर्शन भगवान् की ज्वाला आपके अभीष्ट को बार-बार सम्पन्न करे।।१।।

के लिए विचित्र रंग के मण्डप की चाँदनी की शोभा को प्रवृद्ध करता हुआ श्रीचक्रराज का वह प्रकृष्ट तेज आपकी सुख परम्परा को प्रचुर मात्रा में बढ़ावे ।।५।।

शंसन्त्युन्मेषमुच्छोषितपरमहसो भास्वतः कैटभारे-
रिन्धे सन्ध्येव नक्तंचरविलयकरी या जगद्वन्दनीया ।
वन्धूकच्छायबन्धुस्छविघटितघनच्छेदमेदस्विनी सा
राथाङ्गी रश्मिभङ्गी प्रणुदतु भवतां प्रत्यहोत्थानमेनः ।।६।।

अन्वय- उच्छोषित परमहसो भास्वतः कैटभारेश्च उन्मेषं शंसन्ती नक्तं-चरविलयकरी सन्ध्येव जगद्वन्दनीया, या राथाङ्गी रश्मिभङ्गी इन्धे । वन्धू-कच्छायबन्धुच्छवि घटितघनच्छेद मेदस्विनी सा, भवतां प्रत्यहोत्थानम्, एनः प्रणुदतु ।।६।।

अर्थ- अन्य के तेज के शोषक जो सूर्यदेव उनके उदय के समान भगवान् की विचित्र शक्ति के उदय को प्रकाशित करने वाली, राक्षसों का संहार करने वाली तथा सन्ध्या के सदृश समस्त जगत् की वन्दनीय, श्रीसुदर्शन चक्र की ज्वाला जो जपाकुसुम की कान्ति वाले मेघमण्डल के संसर्ग से प्रचुर मात्रा में सुशोभित होती है । वह आपके प्रत्येक दिन के अर्जित पाप को शमन कर दे ।।६।।

साम्यं धूम्या प्रवृद्ध्या प्रकटयति नभस्तारकाजालकानि-
स्फौलिङ्गी यान्ति कान्तिं विशति यदुदये मेरुरङ्गारशङ्काम् ।
अग्निर्मग्नार्चिरैक्यं भजति दिननिशावल्लभौ दुर्लभाभौ
ज्वालावर्ताविव स्तः प्रहरणपतिजं धाम वस्तद्धिनोतु ।।७।।

अन्वय- यदुदये नभः धूम्या प्रवृद्ध्या साम्यं प्रकटयति, तारकाजालकानि स्फौलिङ्गी कान्ति यान्ति । मेरुः अङ्गार शङ्कां दिशति । अग्निः मग्नार्चिः, ऐक्यं भजति, दिननिशावल्लभो ज्वालावर्तो इव स्तः । एतादृशं प्रहरणपतिजं धाम वः धिनोतु ।।७।।

अर्थ- जिस ज्वाला चक्र के तेज से उदय होने पर आकाश धूम मण्डल के सदृश प्रतींत होता है और नक्षत्रगण स्फुलिंग (चिनगारी) जैसे सुमेरु पर्वत अङ्गार के समान जान पड़ता है तथा अग्नि का तेज तो उसी ज्वाला के तेज में विलीन हो जाता है । चन्द्र एवम् सूर्य भी हतप्रभ हो कर ज्वाला के आवर्त (भँवर) जैसे प्रतीत होते हैं । इस प्रकार का सुदर्शन का दिव्य तेज आपको सुखी करे ।।७।।

दृष्टेऽधिव्योम चक्रे विकचनवजपासन्निकाशे सकाशं
स्वर्भानुर्भानुरेष स्फुटमिति कलयन्नागतो वेगतोऽस्य।
निष्टप्तो यैर्निवृत्तो विधुमिव सहसा स्प्रष्टुमद्यापि नेष्टे
धर्मांशुं ते घटन्तामहितविहतये भानवो भास्वरा वः ।।८।।

अन्वय– अधिव्योम विकचनवजपासन्निकाशे चक्रे, दुष्टे स्वर्भानुः एषः भानुः इति स्फुटं कलयन्, अस्य सकाशं वेगतः आगतः। यैः निष्टप्तः निवृत्तः सन् अद्यापि धर्मांशुं विधुमिव सहसा स्प्रष्टुमपि नेष्टे। ते भास्वराः भानवः वः अहितविहतये घटन्ताम् ।।८।।

अर्थ– किसी समय आकाशमण्डल से प्रफुल्लित जपा पुष्प के सदृश श्रीचक्रराज को देख कर राहु उन्हें सूर्य समझ कर अतिशय वेग पूर्वक निगल जाने के लिए दौड़ पड़ा। परन्तु उनकी प्रतप्त किरणों से सन्तप्त हो कर लौट आया। उस समय से वह सूर्यदेव को सहसा स्पर्श करने का साहस नहीं करता, जैसा कि चन्द्रमा को किया करता है। इस प्रकार की श्रीसुदर्शन चक्र की भास्वर किरणें आपके शत्रुवर्ग का विनाशकरती रहें ।।८।।

देवं हेमाद्रितुङ्गं पृथुभुजशिखरं बिभ्रतीं मध्यदेशे
नाभिद्वीपाभिरामामरविपिनवतीं शेषशीर्षासनस्थाम्।
नेमिं पर्यायभूमिं दिनकरकिरणादृष्टसीमः परीत्य
प्रीत्यै वश्चक्रवालाचल इव विलसन्नस्तु दिव्यास्त्ररश्मिः ।।९।।

अन्वय– पृथुभुजशिखरं हेमाद्रितुङ्गं देवं मध्यदेशे बिभ्रतीम्, नाभिद्विपाभि-रामाम्, अरविपिनवतीं शेषशीर्षासनस्थाम्, पर्यायभूमिं नेमिं परीत्य दिनकरकिरणा दृष्टसीमः चक्रवालाचल इव विलसन् दिव्यास्त्ररश्मिः वा प्रीत्यै अस्तु ।।९।।

अर्थ– मांसल भुजदण्ड के सदृश शिखर वाले सुमेरु पर्वत के समान अत्यन्त उन्नत श्रीसुदर्शनदेव को जो अपने मध्य प्रदेश में धारण करती हैं और जिनकी नाभि अन्तरीप के सदृश सुशोभित होती है। अर–समूह ही जिसमें सघन वन हैं। तथा जो श्रीशेष के फण पर विराजमान एक दूसरी पृथिवी की तरह मालूम पड़ती है। उस नेमि को सभी ओर से व्याप्त कर के तथा जहाँ सूर्य की किरणें नहीं पहुँच पाती, उस लोकालोक पर्वत के समान शोभित चक्रराज की किरणें आपको सुख प्रदान करें ।।९।।

एकं लोकस्य चक्षुर्द्विविधमपनुदत्कर्म नम्रत्रिनेत्रं
दात्रर्थानां चतुर्णां गमयदरिगणं पञ्चतां षड्गुणाढ्यम् ।
सप्तार्चिः शोषिताष्टापदनवकिरणश्रेणिरज्यद्दशांशं
पर्यस्याद्वः शताङ्गावयवपरिवृढज्योतिरीतीः सहस्रम् ।।१०।।

अन्वय– लोकस्य एकं चक्षुः, द्विविधं कर्म अपनुदत् । नम्रत्रिनेत्रं, चतुर्णां अर्थानां दातृ, अरिगणं पञ्चतां गमयत् । षड्गुणाढ्यम्, सप्तार्चिः शोषिताष्टापद–नवकिरणश्रेणिरज्यद्दशांशम् । शताङ्गावयवपरिवृढज्योतिः । सहस्रम्, इतीः (आपदः) पर्यस्यात् ।।१०।।

अर्थ– जो विश्व के मार्ग प्रदर्शन करने में, नेत्र के समान प्रधान है और जिससे शुभ और अशुभ कर्म विनष्ट हो जाते हैं । जो त्रिनेत्र शंकरजी से सुसेवित हो कर, उपासकों को धर्म–अर्थ–काम एवम् मोक्ष प्रदान करती है तथा शत्रुवर्ग का संहार करती है । जो ज्ञान–शक्ति–बल–ऐश्वर्य तथा वीर्य और तेज इन षट् गुणों से सम्पन्न है । जो अग्नि में प्रतप्त सुवर्ण के सदृश, अभिनव किरण समूह से दशों–दिशाओं को लाल रंग में रँगती रहती है । वह श्रीसुदर्शन चक्र की दिव्य ज्योति आपकी सहस्रों विपत्तियों का निराकरण करे ।।१०।।

उच्चण्डे यच्छिखण्डे निबिडयति नभःक्रोडमर्कोऽटतिद्या–
मभ्यस्य प्रौढतापग्लपितवपुरपो बिभ्रतीरभ्रपंक्तीः ।
धत्ते शुष्यत्सुधोत्सो विधुरपमधुनः क्षौद्रकोशस्य साम्यं
रक्षन्त्वस्त्रप्रभोस्ते रचितसुचरितव्युष्टयो धृष्टयो वः ।।११।।

अन्वय– उच्चण्डे (अत्यन्तकराले) यच्छिखण्डे (ज्वाला समूहे) नभः क्रोडं निबिडयति (प्रकटयति) सति अर्कः प्रौढतापग्लपितवपुः सन्, आपो विभ्रतीः अभ्रपङ्क्तीः अभ्यस्य (पौनः पुन्येनाधिगम्य) द्याम् अटति । विधुः शुष्यत्सुधोत्सः अपमधुनः क्षौद्रकोशस्य साम्यं धत्ते । अस्त्रप्रभोस्ते रचितसुचरितव्युष्टयो धृष्टयो, वः रक्षन्तु ।।११।।

अर्थ– शत्रुदल को प्रलय करने वाली सुदर्शन ज्वाला के आकाशमण्डल में प्रकट होने पर उससे प्रतप्त हो कर सूर्य, क्षीणकाय वन, शीतल जल पूर्ण मेघ पंक्ति का आश्रय लेता है । तथा चन्द्रमा भी अमृत प्रवाह के शुष्क हो जाने से मधुशून्य मधुच्छत्र के सदृश निष्प्रभ हो जाता है । इस प्रकार विविध सच्चरित्र की समृद्धि करने वाली श्रीचक्रराज की किरणें आप सब की रक्षा करें ।।११।।

पद्मौघो दीर्घिकाम्भस्यवनिधरतटे गैरिकाम्बुप्रपातः
सिन्दूरं कुञ्जराणां दिशि दिशि गगने सांध्यमेघप्रबन्धः।
पारावारे प्रवालो वनभुवि च तथा प्रेक्ष्यमाणः प्रमुग्धैः
साधिष्ठं वः प्रमोदं जनयतु दनुजद्वैषिणस्त्वैषराशिः ।।१२।।

अन्वय– दीर्घिकाम्भसि पद्मोघः किम् ? अवनिधरतटे गैरिकाम्बुप्रपातः किम् ? दिशि दिशि कुञ्जराणां सिन्दूरं किम् ? गगने सान्ध्यमेघः प्रबन्धः किम ? पारावारे प्रवालः किम् ? वनभुवि च प्रवालः किम् ? एवम् प्रमुग्धैः संदिग्धं प्रेक्षमाणः दनुजद्वेषिणस्त्वैषराशिः वः साधिष्ठं प्रमोदं जनयतु ।।१२।।

अर्थ– श्रीचक्रराज का ज्वालासमूह, स्वच्छतर सरोवर के जल में प्रतिबिम्बित होने पर अल्पज्ञों के लिए, कमलखण्ड के समान और पर्वतों के स्फटिक तट में गेरू के निर्झर प्रताप के सदृश तथा पूर्व आदि दिशा में दिग्गजों के मस्तक के अलंकार स्वरूप सिन्दूर की तरह एवम् आकाश में सायंकालीन जलधर पटल की भाँति भासित होता है। इसी प्रकार समुद्र में प्रवाल (मूँगे) की तरह और वनस्थली में तो किसलय (पल्लव) के सदृश जान पड़ता है। इस प्रकार संदिग्ध जनों द्वारा देखी जाने वाली, दैत्य एवम् दानव कुल के संहारक श्रीसुदर्शन भगवान् की वह दिव्य तेजोराशि, आपके लिए सन्तोषप्रद प्रमोद और प्रबोध प्रदान करे ।।१२।।

भानो भा नो त्वदीया स्फुरति कुमुदिनीमित्र ते कुत्र तेज–
स्तारास्थादधीरोऽस्यनल न भवतः स्वैरमैरम्मदार्चिः।
शंसन्तीत्थं नमःस्था यदुदयसमये चक्रराजांशवस्ते
युष्माकं प्रौढतापप्रभवभवगदापक्रमाय क्रमन्ताम् ।।१३।।

अन्वय– यदुदयसमये नभस्था, इत्थं शंसन्ति हे भानो! त्वदीया भा नो स्फुरति। हे कुमुदिनीमित्र ते तेजः कुत्र। हे तारा! आरात्स्थ, हे अनल! अधीरोऽसि। हे ऐरम्मदिर्चि! ते चक्रराजांशवः वः प्रौढतापप्रभवभवगदाप–क्रमाय क्रमन्ताम् ।।१३।।

अर्थ– जिस चक्र ज्वाला के उदयकाल में आकाश के देवता लोग इस प्रकार उपहासपूर्वक कहते हैं कि; हे सूर्य! अब तुम्हारा तेज नहीं चमक रहा है। हे चन्द्र! तुम्हारा प्रकाश कहां विलीन हो गया? हे तारागण! तुम सभी अदृश्य लग रहे हो। हे अग्निदेव क्यों अधीर बन रहे हो? हे विद्युत्लते! अब तुम्हारी

प्रत्युद्यातं मयूखैर्नभसि दिनकृतः प्रत्तसेवं प्रभाभि-
र्भूमौ सौमेरवीभिर्दिवि वरिवसितं दीप्तिभिर्देवधाम्नाम् ।
भूयस्यै भूतये वः स्फुरतु सकलदिग्भ्रान्तसान्द्रस्फुलिङ्गम्
चाक्रं जाग्रत्प्रतापं त्रिभुवनविजयव्यग्रमुग्रं महस्तत् ।।२।।

अन्वय- सौमेरवीभिः प्रभाभिः भूमौ प्रत्त (प्राप्त) सेवम्, दिनकृतः मयूखैः नभसि प्रत्युद्यातम्, देवधाम्नाम् दीप्तिभिः दिवि वरिवसितम्, सकलदिग्भ्रान्त-सान्द्रस्फुलिङ्गम्, त्रिभुवनविजयव्यग्रम्, जाग्रत्प्रतापम्, उग्रं, चाक्रम् महः, वः भूयस्यै भूतये भूयात् ।।२।।

अर्थ- सुमेरु पर्वत अपनी प्रभाओं द्वारा भूलोक में जिसकी सेवा करता रहता है और आकाशमण्डल में सूर्य की किरणों द्वारा जिसका स्वागत किया जाता है। इसी तरह स्वर्गलोक में भी देवताओं के भव्य सुवर्णमय भवनों की दिव्य कान्ति से जिनका पूजन किया जाता है। समस्त दिशायें जिसके तेजस्वी स्फुलिङ्ग से व्याप्त रहती हैं और जो स्वयं तीनों लोक के विजय के लिये सर्वदा सतर्क रहा करता है। इंस प्रकार अत्यन्त प्रतापवान् और भयंकर श्रीसुदर्शन चक्र का वह दिव्य तेज आपके लिए अधिक-से-अधिक ऐश्वर्य को प्रदान करे ।।२।।

पूर्णे पूरैः सुधानां सुमहति लसतः सोमबिम्बालवाले-
बाहाशाखावरुद्धक्षिति गगनदिवश्चक्रराजद्रुमस्य ।
ज्योतिश्छद्मा प्रवालः प्रकटितसुमनः सम्पदुत्तंसलक्ष्मीं
पुष्णन्नाशामुखेषु प्रदिशतु भवतां सप्रकर्षं प्रहर्षम् ।।३।।

अन्वय- सुधानां पूरैः पूर्णे, सुमहति सोमबिम्बालवाले लसतः बाहा-शाखावरुद्धक्षितिगगनदिवः चक्रराजद्रुमस्य ज्योतिश्छद्मा प्रवालः प्रकटित सुमनः सम्पत्, आशामुखेषु उत्तंसलक्ष्मीं पुष्णन् भवतां सप्रकर्षं प्रहर्षं प्रदिशतु ।।३।।

अर्थ- अमृत रस से परिपूर्ण चन्द्रमण्डल रूप आलवाल (थाले) में विराजमान तथा अपनी भुजा रूप शाखाओं से, पृथिवी, आकाश एवम् स्वर्ग को आच्छादित करने वाले श्रीचक्रराज रूप कल्पवृक्ष के ज्योतिः स्वरूप पत्ते जो सुमन (पुष्प) के सदृश सत्परिषद् द्वारा विकसित रहते हैं। वे कान्ता रूप दिशाओं के मुखमण्डल पर अलंकार की शोभा सम्पादन करते हुए आप सबके लिए विशेष रूप से प्रमोद प्रदान करें ।।३।।

आरादारात्सहस्राद्विसरति विमतक्षेपदक्षाद्यदक्षान्ना-
भेर्भास्वत्सनाभेर्निजविभवपरिच्छिन्नभूमेश्च नेमेः।
आम्नायैरेककण्ठैः स्तुतमहिम महो माधवीयस्य हेते-
स्तद्वो दिक्ष्वेधमानं चतसृषु चतुरः पुष्यतात्पूरुषार्थान्।।४।।

अन्वय- सहस्रात्, आरात्, विमतक्षेपदक्षात्, अक्षात्, भास्वत्, सनाभेः निजविभव परिच्छिन्न भूमेः नेमेः सकाशात् सञ्जातं यन्महः आरात् विसरति। एककण्ठैः आम्नायैः स्तुतमहिम चतसृषु दिक्षु एधमानं माधवीयस्य हेतेः तन्महः चतुरः पूरुषार्थान् पुष्यतात्।।४।।

अर्थ- सहस्रों अरों से तथा शत्रु संहार में प्रवीण अक्ष द्वारा और सूर्य के सदृश तेज वाली नाभि से एवम् अपने विभव से भूमण्डल को मापने वाली नेमि द्वारा निकला हुआ सर्वत्र व्यापनशील तेज जिनके महत्त्व का वर्णन चारों वेद सर्वदा एक स्वर से करते रहते हैं। चारों दिशाओं में वृद्धिशील भगवान् के चक्र का वह तेज आप सबके धर्म आदि चारों पुरुषार्थों का पोषण करे।।४।।

श्यामं धामप्रसृत्या क्वचन भगवतः क्वापि बभ्रु प्रकृत्या
शुभ्रं शेषस्य भासा क्वचन मणिरुचा क्वापि तस्यैव रक्तम्।
नीलं श्रीनेत्रकान्त्या क्वचिदपि मिथुनस्यादिमस्येव चित्रां
व्यातन्वानं वितानश्रियमुपचिनुताच्छर्म वश्चक्रभानम्।।५।।

अन्वय- क्वचन भगवतः धाम प्रसृत्या श्यामं क्वापि प्रकृत्या बभ्रु क्वचन शेषस्य भासा शुभ्रम्, क्वापि तस्यैव मणिरुचा रक्तम्, क्वचिदपि श्रीनेत्रकान्त्या नीलम्, आदिमस्य मिथुनस्य चित्रां वितानश्रियं व्यातन्वानं, चक्रभानं वः शर्म उपचिनुतात्।।५।।

अर्थ- श्रीसुदर्शन का जो तेज, भगवान् के श्याम विग्रह के सम्बन्ध से किसी प्रदेश में तो श्याम रंग का भासित होता है और कहीं पर अपनी स्वाभाविक कान्ति से पीत वर्ण का। इसी प्रकार कहीं-कहीं श्रीशेष भगवान् की धवल कान्ति के संसर्ग से शुभ्र वर्ण का और किसी-किसी स्थल पर तो उन्हीं शेषजी की मणियों की चमकाहट से रक्त वर्ण का ज्ञात होता है। एवम् किसी प्रदेश पर, श्रीदेवी के दिव्य नीलकमल सदृश नेत्र की कान्ति से उसकी नील वर्ण की छटा मालूम पड़ती है। इस प्रकार आदि कालीन दिव्य दम्पत्ति भगवान् श्रीलक्ष्मीनारायण

के लिए विचित्र रंग के मण्डप की चाँदनी की शोभा को प्रवृद्ध करता हुआ श्रीचक्रराज का वह प्रकृष्ट तेज आपकी सुख परम्परा को प्रचुर मात्रा में बढ़ावे ।।५।।

शंसन्त्युन्मेषमुच्छोषितपरमहसो भास्वतः कैटभारे-
रिन्धे सन्ध्येव नक्तंचरविलयकरी या जगद्वन्दनीया ।
वन्धूकच्छायबन्धुच्छविघटितघनच्छेदमेदस्विनी सा
राथाङ्गी रश्मिभङ्गी प्रणुदतु भवतां प्रत्यहोत्थानमेनः ।।६।।

अन्वय– उच्छो षित परमहसो भास्वतः कैटभारेश्च उन्मेषं शंसन्ती नक्तं-चरविलयकरी सन्ध्येव जगद्वन्दनीया, या राथाङ्गी रश्मिभङ्गी इन्धे । वन्धू-कच्छायबन्धुच्छवि घटितघनच्छेद मेदस्विनी सा, भवतां प्रत्यहोत्थानम्, एनः प्रणुदतु ।।६।।

अर्थ– अन्य के तेज के शोषक जो सूर्यदेव उनके उदय के समान भगवान् की विचित्र शक्ति के उदय को प्रकाशित करने वाली, राक्षसों का संहार करने वाली तथा सन्ध्या के सदृश समस्त जगत् की वन्दनीय, श्रीसुदर्शन चक्र की ज्वाला जो जपाकुसुम की कान्ति वाले मेघमण्डल के संसर्ग से प्रचुर मात्रा में सुशोभित होती है । वह आपके प्रत्येक दिन के अर्जित पाप को शमन कर दे ।।६।।

साम्यं धूम्या प्रवृद्ध्या प्रकटयति नभस्तारकाजालकानि-
स्फौलिङ्गी यान्ति कान्तिं विशति यदुदये मेरुरङ्गारशङ्काम् ।
अग्निर्मग्नार्चिरैक्यं भजति दिननिशावल्लभौ दुर्लभाभौ
ज्वालावर्ताविव स्तः प्रहरणपतिजं धाम वस्तद्धिनोतु ।।७।।

अन्वय– यदुदये नभः धूम्या प्रवृद्ध्या साम्यं प्रकटयति, तारकाजालकानि स्फौलिङ्गी कान्ति यान्ति । मेरुः अङ्गार शङ्कां दिशति । अग्निः मग्नार्चिः, ऐक्यं भजति, दिननिशावल्लभो ज्वालावर्तो इव स्तः । एतादृशं प्रहरणपतिजं धाम वः धिनोतु ।।७।।

अर्थ– जिस ज्वाला चक्र के तेज से उदय होने पर आकाश धूम मण्डल के सदृश प्रतीत होता है और नक्षत्रगण स्फुलिंग (चिनगारी) जैसे सुमेरु पर्वत अङ्गार के समान जान पड़ता है तथा अग्नि का तेज तो उसी ज्वाला के तेज में विलीन हो जाता है । चन्द्र एवम् सूर्य भी हतप्रभ हो कर ज्वाला के आवर्त (भँवर) जैसे प्रतीत होते हैं । इस प्रकार का सुदर्शन का दिव्य तेज आपको सुखी करे ।।७।।

दृष्टेऽधिव्योम चक्रे विकचनवजपासन्निकाशे सकाशं
स्वर्भानुर्भानुरेष स्फुटमिति कलयन्नागतो वेगतोऽस्य।
निष्टप्तो यैर्निवृत्तो विधुमिव सहसा स्प्रष्टुमद्यापि नेष्टे
धर्मांशुं ते घटन्तामहितविहतये भानवो भास्वरा वः ।।८।।

अन्वय– अधिव्योम विकचनवजपासन्निकाशे चक्रे, दुष्टे स्वर्भानुः एषः भानुः इति स्फुटं कलयन्, अस्य सकाशं वेगतः आगतः। यैः निष्टप्तः निवृत्तः सन् अद्यापि धर्मांशुं विधुमिव सहसा स्प्रष्टुमपि नेष्टे। ते भास्वराः भानवः वः अहितविहतये घटन्ताम् ।।८।।

अर्थ– किसी समय आकाशमण्डल से प्रफुल्लित जपा पुष्प के सदृश श्रीचक्रराज को देख कर राहु उन्हें सूर्य समझ कर अतिशय वेग पूर्वक निगल जाने के लिए दौड़ पड़ा। परन्तु उनकी प्रतप्त किरणों से सन्तप्त हो कर लौट आया। उस समय से वह सूर्यदेव को सहसा स्पर्श करने का साहस नहीं करता, जैसा कि चन्द्रमा को किया करता है। इस प्रकार की श्रीसुदर्शन चक्र की भास्वर किरणें आपके शत्रुवर्ग का विनाशकरती रहें ।।८।।

देवं हेमाद्रितुङ्गं पृथुभुजशिखरं बिभ्रतीं मध्यदेशे
नाभिद्वीपाभिरामामरविपिनवतीं शेषशीर्षासनस्थाम्।
नेमिं पर्यायभूमिं दिनकरकिरणादृष्टसीमः परीत्य
प्रीत्यै वश्चक्रवालाचल इव विलसन्नस्तु दिव्यास्त्ररश्मिः ।।९।।

अन्वय– पृथुभुजशिखरं हेमाद्रितुङ्गं देवं मध्यदेशे बिभ्रतीम्, नाभिद्विपाभि–रामाम्, अरविपिनवतीं शेषशीर्षासनस्थाम्, पर्यायभूमिं नेमिं परीत्य दिनकरकिरणा दृष्टसीमः चक्रवालाचल इव विलसन् दिव्यास्त्ररश्मिः वा प्रीत्यै अस्तु ।।९।।

अर्थ– मांसल भुजदण्ड के सदृश शिखर वाले सुमेरु पर्वत के समान अत्यन्त उन्नत श्रीसुदर्शनदेव को जो अपने मध्य प्रदेश में धारण करती हैं और जिनकी नाभि अन्तरीप के सदृश सुशोभित होती है। अर–समूह ही जिसमें सघन वन हैं। तथा जो श्रीशेष के फण पर विराजमान एक दूसरी पृथिवी की तरह मालूम पड़ती है। उस नेमि को सभी ओर से व्याप्त कर के तथा जहाँ सूर्य की किरणें नहीं पहुँच पाती, उस लोकालोक पर्वत के समान शोभित चक्रराज की किरणें आपको सुख प्रदान करें ।।९।।

एकं लोकस्य चक्षुर्द्विविधमपनुदत्कर्म नम्रत्रिनेत्रं
दात्रर्थानां चतुर्णां गमयदरिगणं पञ्चतां षड्गुणाढ्यम् ।
सप्तार्चिः शोषिताष्टापदनवकिरणश्रेणिरज्यद्दशांशं
पर्यस्याद्वः शताङ्गावयवपरिवृढज्योतिरीतीः सहस्रम् ।।१०।।

अन्वय– लोकस्य एकं चक्षुः, द्विविधं कर्म अपनुदत् । नम्रत्रिनेत्रं, चतुर्णां अर्थानां दातृ, अरिगणं पञ्चतां गमयत् । षड्गुणाढ्यम्, सप्तार्चिः शोषिताष्टापद–नवकिरणश्रेणिरज्यद्दशांशम् । शताङ्गावयवपरिवृढज्योतिः । सहस्रम्, इतीः (आपदः) पर्यस्यात् ।।१०।।

अर्थ– जो विश्व के मार्ग प्रदर्शन करने में, नेत्र के समान प्रधान है और जिससे शुभ और अशुभ कर्म विनष्ट हो जाते हैं । जो त्रिनेत्र शंकरजी से सुसेवित हो कर, उपासकों को धर्म–अर्थ–काम एवम् मोक्ष प्रदान करती है तथा शत्रुवर्ग का संहार करती है । जो ज्ञान–शक्ति–बल–ऐश्वर्य तथा वीर्य और तेज इन षट् गुणों से सम्पन्न है । जो अग्नि में प्रतप्त सुवर्ण के सदृश, अभिनव किरण समूह से दशों–दिशाओं को लाल रंग में रँगती रहती है । वह श्रीसुदर्शन चक्र की दिव्य ज्योति आपकी सहस्रों विपत्तियों का निराकरण करे ।।१०।।

उच्चण्डे यच्छिखण्डे निबिडयति नभःक्रोडमर्कोऽटतिद्या–
मभ्यस्य प्रौढतापग्लपितवपुरपो बिभ्रतीरभ्रपंक्तीः ।
धत्ते शुष्यत्सुधोत्सो विधुरपमधुनः क्षौद्रकोशस्य साम्यं
रक्षन्त्वस्त्रप्रभोस्ते रचितसुचरितव्युष्टयो धृष्टयो वः ।।११।।

अन्वय– उच्चण्डे (अत्यन्तकराले) यच्छिखण्डे (ज्वाला समूहे) नभः क्रोडं निबिडयति (प्रकटयति) सति अर्कः प्रौढतापग्लपितवपुः सन्, आपो विभ्रतीः अभ्रपङ्क्तीः अभ्यस्य (पौनः पुन्येनाधिगम्य) द्याम् अटति । विधुः शुष्यत्सुधोत्सः अपमधुनः क्षौद्रकोशस्य साम्यं धत्ते । अस्त्रप्रभोस्ते रचितसुचरितव्युष्टयो धृष्टयो, वः रक्षन्तु ।।११।।

अर्थ– शत्रुदल को प्रलय करने वाली सुदर्शन ज्वाला के आकाशमण्डल में प्रकट होने पर उससे प्रतप्त हो कर सूर्य, क्षीणकाय वन, शीतल जल पूर्ण मेघ पंक्ति का आश्रय लेता है । तथा चन्द्रमा भी अमृत प्रवाह के शुष्क हो जाने से मधुशून्य मधुच्छत्र के सदृश निष्प्रभ हो जाता है । इस प्रकार विविध सच्चरित्र की समृद्धि करने वाली श्रीचक्रराज की किरणें आप सब की रक्षा करें ।।११।।

पद्मौघो दीर्घिकाम्भस्यवनिधरतटे गैरिकाम्बुप्रपात:
सिन्दूरं कुञ्जराणां दिशि दिशि गगने सांध्यमेघप्रबन्ध: ।
पारावारे प्रवालो वनभुवि च तथा प्रेक्ष्यमाण: प्रमुग्धै:
साधिष्ठं व: प्रमोदं जनयतु दनुजद्वेषिणस्त्वैषराशि: ।।१२।।

अन्वय– दीर्घिकाम्भसि पद्मोघ: किम् ? अवनिधरतटे गैरिकाम्बुप्रपात: किम् ? दिशि दिशि कुञ्जराणां सिन्दूरं किम् ? गगने सान्ध्यमेघ: प्रबन्ध: किम ? पारावारे प्रवाल: किम् ? वनभुवि च प्रवाल: किम् ? एवम् प्रमुग्धै: संदिग्धं प्रेक्षमाण: दनुजद्वेषिणस्त्वैषराशि: व: साधिष्ठं प्रमोदं जनयतु ।।१२।।

अर्थ– श्रीचक्रराज का ज्वालासमूह, स्वच्छतर सरोवर के जल में प्रतिबिम्बित होने पर अल्पज्ञों के लिए, कमलखण्ड के समान और पर्वतों के स्फटिक तट में गेरू के निर्झर प्रताप के सदृश तथा पूर्व आदि दिशा में दिग्गजों के मस्तक के अलंकार स्वरूप सिन्दूर की तरह एवम् आकाश में सायंकालीन जलधर पटल की भाँति भासित होता है। इसी प्रकार समुद्र में प्रवाल (मूँगे) की तरह और वनस्थली में तो किसलय (पल्लव) के सदृश जान पड़ता है। इस प्रकार संदिग्ध जनों द्वारा देखी जाने वाली, दैत्य एवम् दानव कुल के संहारक श्रीसुदर्शन भगवान् की वह दिव्य तेजोराशि, आपके लिए सन्तोषप्रद प्रमोद और प्रबोध प्रदान करे ।।१२।।

भानो भा नो त्वदीया स्फुरति कुमुदिनीमित्र ते कुत्र तेज–
स्तारास्थादधीरोऽस्यनल न भवत: स्वैरमैरम्मदार्चि: ।
शंसन्तीत्थं नम:स्था यदुदयसमये चक्रराजांशवस्ते
युष्माकं प्रौढतापप्रभवभवगदापक्रमाय क्रमन्ताम् ।।१३।।

अन्वय– यदुदयसमये नभस्था, इत्थं शंसन्ति हे भानो! त्वदीया भा नो स्फुरति। हे कुमुदिनीमित्र ते तेज: कुत्र। हे तारा! आरात्स्थ, हे अनल! अधीरोऽसि। हे ऐरम्मदिर्चि! ते चक्रराजांशव: व: प्रौढतापप्रभवभवगदाप–क्रमाय क्रमन्ताम् ।।१३।।

अर्थ– जिस चक्र ज्वाला के उदयकाल में आकाश के देवता लोग इस प्रकार उपहासपूर्वक कहते हैं कि; हे सूर्य! अब तुम्हारा तेज नहीं चमक रहा है। हे चन्द्र! तुम्हारा प्रकाश कहां विलीन हो गया? हे तारागण! तुम सभी अदृश्य लग रहे हो। हे अग्निदेव क्यों अधीर बन रहे हो? हे विद्युत्लते! अब तुम्हारी

स्वतन्त्रता छिन गई। इस प्रकार सूर्य-चन्द्र-ग्रह-नक्षत्रों को आक्रान्त करने वाली श्रीचक्रराज की किरणें आपको प्रकृष्ट सन्ताप देने वाले, भवरोग के उपशमन के लिये सर्वदा सचेष्ट रहें ।।१३।।

जग्ध्वा कर्णेषु दूर्वांकुरमरिसुदृशामक्षिषु स्वर्वधूनां-
पीत्वा चाम्भश्चरन्त्यः सवृषमनुगता वल्लवेनादिमेन ।
गावो वश्चक्रभर्तुः परममृतरसं प्रश्रितानां दुहाना
ऋद्धिं स्वालोकलुप्तत्रिभुवनतमसः सानुबन्धां ददन्ताम् ।।१४।।

अन्वय- अरिसदृशां कर्णेषु दूर्वांकुरं जग्ध्वा, स्वर्वधूनां, अक्षिषु अम्भः पीत्वा, सवृषमनुचरन्त्यः आदिमेन वल्लवेन अनुगता। प्रश्रितानां अमृतरसं दुहाना, स्वालोकलुप्तत्रिभुवनतमसः, चक्रभर्तुः, गावः, वः सानुबन्धां ऋद्धिं ददन्ताम् ।।१४।।

अर्थ- शत्रुवर्ग की स्त्रियों के कानों में आभूषण के स्थान पर धारण किये गये नूतन दूर्वादल के गुच्छों को खा कर और उन्हें विधवा बना कर पश्चात् देवांगनाओं के नेत्र के शोकाश्रु को पी करके वृष रूप धर्म के साथ आदि गोपाल श्रीकृष्णचन्द्र का अनुगमन करने वाली और अपने आश्रितों को मोक्षरूप अमृत देती हुई एवम् अपने प्रकाश द्वारा त्रिलोक के अन्धकार को नष्ट करने वाली, श्रीचक्रराज भगवान् की श्रीगोस्वरूप किरणें आपको नित्य स्थायी सम्पत्ति प्रदान करें ।।१४।।

सेनां सेनां मघोनो महति रणमुखेऽलंभयं लम्भयन्ती-
रुत्सेकोष्णालुदोष्णां प्रथमदिविषदामावलीर्यावलीढे ।
विश्वं विश्वंभराद्यं रथपदधिपतेर्लीलया पालयन्ती
ऋद्धिः सा दीधितीनां वृजिनमनुजनुर्मार्जयत्वार्जितं वः ।।१५।।

अन्वय- महति रणमुखे सेनां (सेनापतिसहितां) मघोनः सेना, अलंभयं लम्भयन्ती। उत्सेकोष्णालुदोष्णां प्रथमदिविषदां, आवलीः यावलीढे। विश्वम्भराद्य विश्वं लीलया पालयन्ती रथपदधिपतेः दीधितीनां ऋद्धिः वः अनुजनुः (जन्मजन्मार्जितं) वृजिनं मार्जयतु ।।१५।।

अर्थ- जो भयंकर युद्ध के स्थल में सेनापति सहित इन्द्र की सेना को पर्याप्त भयभीत करती हुई एवम् बल से उन्मत्त तथा प्रतप्त और असहिष्णु भुजा वाले दैत्य-दानवों के समूह को भक्षण कर डालती है। इस प्रकार श्रीसुदर्शनराज की

ज्वालाराशि, जो समस्त भूमण्डल आदि लोकों के परित्राण की अनायास ही क्षमता रखती है। वह आप सबके जन्म-जन्मार्जित पापों का प्रक्षालन करे।।१५।।

तप्ता स्वेनोष्मणेव प्रतिभटवपुषामस्रधारां धयन्ती
प्राप्तेव क्षीबभावं प्रतिदिशमसकृत्तन्वती घूर्णितानि।
वंशास्थिस्फोटशब्दं प्रकटयति पटून्याऽऽवहन्त्यट्टहासान्
भा सा वः स्यन्दनाङ्गप्रभुसमुदयिनी स्पन्दतां चिन्तिताय।।१६।।

अन्वय- या भाः स्वेनोष्मणा तप्ता प्रतिभटवपुषाम्, अस्रधारां धयन्ती क्षीबभावं प्राप्तेव प्रतिदिशं धूर्णितानि, असकृत्तन्वती, वंशास्थिस्फोटशब्दम् आवहन्ती, पटून् अट्टहासान् प्रकटयति। स्यन्दनाङ्गप्रभुसमुदयिनी सा भाः वः चिन्तिताय स्पन्दताम्।।१६।।

अर्थ- जो चक्र ज्वाला, अपनी ऊष्मा से प्रतप्त हो कर शत्रुवृन्द के शरीर से निकली हुई रक्तधारा के पीने से उन्मत्त जैसी बन कर प्रत्येक दिशाओं में बार-बार घूमा करती है तथा शरीर के आधारभूत वंशनाल के समान आकार वाली, पीठ की हड्डी के टूटने की तरह चटचटा शब्द किया करती है। इस प्रकार चित्त को विक्षुब्ध करने वाले अट्टहास को करती हुई वह श्रीसुदर्शनराज की दिव्य प्रभा आपके अभीष्ट मनोरथ को सफल करने के लिये सचेष्ट हो।।१६।।

देवैरासेव्यमानो दनुजभटंभुजादण्डदर्पोष्णतप्तै-
राशारोधोऽतिलङ्घी लुठदुडुपटलीलक्ष्यडिण्डीरपिण्डः।
रिङ्गज्ज्वालातरङ्गत्रुटितरिपुतरुव्रातपातोग्रमार्ग-
श्चाक्रो वः शोचिरोघः शमयतु दुरितापह्नवं दाववह्निम्।।१७।।

अन्वय- दनुजभटभुजादण्डदर्पोष्णतप्तैः देवैः, आसेव्यमानः आशारोधोऽतिलङ्घी लुठदुडुपटलीलक्ष्यडिण्डीरपिण्डः, रिङ्गज्ज्वालातरङ्गत्रुटितरिपुतरुव्रातपातोग्रमार्गः सः चाक्रः शोचिरोधः वः दुरितापह्नवं दाववह्निं शमयतु।।१७।।

अर्थ- दानव वीरों के दर्पपूर्ण भुजदण्डों की ऊष्णता से सन्तप्त देववर्ग जिसकी सेवा करते हैं और जिसने दिशारूप सीमाओं को अतिक्रान्त कर लिया है, चमकते हुए नक्षत्र मण्डल जिसमें फेन पिण्ड के सदृश प्रतीत होते हैं। जिसने अपनी ज्वालारूप चञ्चल तरंगों द्वारा वृक्ष समूह रूप शत्रु मण्डल को तोड़-तोड़ गिरा देने से मार्ग को भयंकर कर डाला है। वह श्रीसुदर्शन ज्वालारूप महानद आप लोगों के पापों के दावानल को शमन करे।।१७।।

भ्राम्यती संश्रितानां भ्रमशमनकरी च्छन्नसूर्यप्रकाशा
सूर्यालोकानुरूपा रिपुहृदयतमस्कारिणी निस्तमस्का।
धारासम्पातिनी च प्रकटितदहना दीप्तिरस्त्रेशितुर्व–
श्चित्राभद्राय विद्रावितविमतजना जायतामायताय ।।१८।।

अन्वय– स्वयं भ्राम्यन्ती संश्रितानां भ्रमशमनकरी, छन्नसूर्य प्रकाशा सूर्य–लोकानुरूपा रिपुहृदयतमस्कारिणी निस्तमस्का। धारा सम्पातिनी च प्रकटित–दहना, विद्रावितविमतजना, अस्त्रेशितुः चित्रा दीप्तिः वा आयताय भद्राय जायताम् ।।१८।।

अर्थ– श्रीचक्रराज की जो विचित्र प्रभा स्वयं भ्रमण करती हुई भी अपने आश्रितों के भ्रम को शमन करती है। एवम् सूर्य प्रकाश को आवृत करती हुई भी सूरियों को दर्शन में प्रकाश प्रदान करती है। शत्रुओं को विचेत बनाती हुई भी स्वयं ज्योतिस्वरूप है। तथा जल प्रपात का कारण हो कर प्रचण्ड अग्नि को भी दीप्त करती है। प्रतिपक्षियों को विद्रावण कर देने वाली वह दिव्य प्रभा आपके लिए असीम मङ्गल सम्पन्न करे ।।१८।।

निन्ये वन्येव काशीदवशिखिजटिलज्योतिषा येन दाहं
कृत्या वृत्त्या विलिल्ये शलभसुलभया यत्र चित्रप्रभावे।
रुद्रोऽप्यद्रेर्दुहित्रा सह गहनगुहां यद्भयादभ्ययासीत्
दिश्याद्विश्वार्चितो वः स शुभमनिभृतं शौरिहेतिप्रतापः ।।१९ ।।

अन्वय– दवशिखिजटिलज्योतिषा येन काशी वन्या इव दाहं निन्ये। चित्रप्रभावे यत्र प्रतापे कृत्या शलभसुलभया वृत्या विलिल्ये। रुद्रोऽप्यद्रेः दुहित्रा सह यद्भयात् गहनगुहां, अभ्ययासीत्। विश्वार्चितः सः शौरिहेतिप्रतापः वः अनिभृतं शुभं दिश्यात् ।।१९।।

अर्थ– दावानल के समान जिसकी जाज्वल्यमान ज्वाला ने काशीपुरी को वन समूह की तरह भस्मसात् कर दिया था और उसके विचित्र तेज में कृत्या (पिशाची) शलभ (पतङ्गे) के सदृश विलीन हो गई। जिससे भयभीत हो कर शङ्कर भी पार्वती के साथ बड़ी गहन गुफा में जा कर छिप गये। श्रीचक्रराज का वह विश्ववन्द्य प्रताप आप सभी को प्रस्फुट कल्याण प्रदान करे ।।१९।।

उद्यन्बिम्बादुदारान्नयनजलहिमं मार्जयन्निर्जरीणा
मज्ञानध्वान्तमूर्च्छाकरजनिरजनीभञ्जनव्यञ्जिताध्वा।
न्यक्कुर्वाणो ग्रहाणां स्फुरणपहरन्नर्चिषः पावकीया–
श्चक्रेशार्कप्रकाशो दिशतु दश दिशो व्यश्नुवानं यशो वः ।।२०।।

अन्वय– उदारात् बिम्बात् उद्यन्, निर्जरीणां नयनहिमजलं मार्जयन्, अज्ञानध्वाज्ञान्तमूर्च्छाकरजनीभञ्जनव्यञ्जिताध्वा। ग्रहाणां स्फुरणंन्यक्कु–र्वाणः, पावकीयाः अर्चिषः अपहरन् चक्रेशार्कप्रकाशः वः दश दिशो व्यश्नुवानं यशः प्रदिशतु ।।२०।।

अर्थ– अत्यन्त विशाल मण्डल से प्रकट हो कर देवाङ्गनाओं के शीतल शोकाश्रु का सम्मार्जन करता हुआ एवम् अज्ञानरूप अन्धकार की मूर्च्छा कर, व्यामोहात्मक रात्रि को विनष्ट कर के जो सुस्पष्ट मार्ग का प्रदर्शन करता है तथा जिसने नक्षत्रों की कान्ति को तिरस्कृत करते हुए अग्नि–ज्वालाओं को भी हतप्रभ कर डाला है। श्रीसुदर्शन सूर्य का वह प्रकाश आपके लिए दश दिगन्त यश प्रदान करे ।।२०।।

वर्गस्य स्वर्गधाम्नामपि दनुजनुषां विग्रहं निग्रहीतुं
दातुं सद्यो वलानां श्रियमतिशयिनीं पत्रभङ्गानुवृत्त्या।
योक्तुं देदीप्यते या युगपदपि पुरो भूतिमय्या प्रकृत्या
सा वो नुद्यादविद्यां द्युतिरमृतरसस्यन्दिनी स्यान्दनाङ्गी ।।२१।।

अन्वय– स्वर्गधाम्नां वर्गस्य दनुजनुषां वर्गस्यापि विग्रहं निग्रहीतुं दानववर्गस्य बलानां (सैन्यानां) पत्रभङ्गानुवृत्या (वाहनविनाशप्रणाल्या) अतिशयिनी श्रियं (सम्पदम्) दातुं (नाशयितुम्) सद्यः स्वर्गधाम्नाम्, अवलानाम्, पत्रभङ्गानुवृत्या (कर्णाभरणविरचनानुवृत्या) अतिशयिनीं श्रियं (शोभां) दातुं (वितरितुं) दानववर्गस्य पुरः (नगराणि–शरीराणि) भूतमय्या (भस्मप्रचुरता) प्रकृत्या (शरीरेण) योक्तुं देववर्गस्य पुरः (पत्तनानि) भूतिमय्या (ऐश्वर्यप्रचुरतया) प्रकृत्या (स्वभावेन) योक्तुं च या स्यान्दनाङ्गी द्युतिः, प्रकाशते, अमृतरसस्यन्दिनी सा वः अविद्यां नुद्यात् ।।२१।।

अर्थ– देवता और दैत्यों के विरोध तथा शरीर के उपशम के लिए, दैत्यों की सेना के वाहनों को विनष्ट करके और उनकी सम्पत्ति को भी नष्ट–भ्रष्ट करने के लिए तथा देवाङ्गनाओं को कर्ण के आभूषण से अलंकृत करके, अत्यन्त

शोभा प्रदान करने के लिए एवम् दानवों के नगरों को भस्म करके, राख का ढेर कर देने के लिए तथा अमरावती को उत्तम ऐश्वर्य द्वारा समृद्ध करने के लिए जो सर्वदा सुप्रकाशित रहती है। अमृत रस का प्रवाह बहाने वाली श्रीचक्रराज भगवान् की वह ज्वाला कान्ति आपकी अविद्या का निराकरण करे ।।२१।।

दाहं दाहं सपत्नान्समरभुवि लसद्भस्मना वर्त्मना यान्
क्रव्यादप्रेतभूताद्यभिलषितपुषा प्रीतकापालिकेन ।
कङ्कालैः कालधौतं गिरिमिव कुरुते यः स्वकीर्तेर्विहर्तुम्
घृष्टिः सांदृष्टिकं वः सकलमुपनयत्वायुधाग्रेसरस्य ।।२२।।

अन्वय– समरभुवि सपत्नान् दाहं दाहं, लसद्भस्मना क्रव्यादप्रेतभूताद्यभिलषितपुषा प्रीतकापालिकेन वर्त्मना यान् यो घृष्टिः स्वकीर्तेः विहर्तुं कङ्कालैः कालधौतं गिरिमिव कुरुते। सः आयुधाग्रेसरस्य घृष्टिः वः सकलं सादृष्टिकं (सद्यः कालीनं फलम्), उपनयतु ।।२२।।

अर्थ– समरभूमि में राक्षस वीरों को जला–जला कर उनके शरीर भस्म से विभूषित एवम् अपक्व मांसाहारी भूतप्रेतों को सुपुष्ट करने वाली तथा रुधिर पान करने वाले कापालिक वृन्द से व्याप्त मार्ग द्वारा गमन करती हुई जो चक्र ज्वाला अपनी कीर्ति सञ्चार के लिए मृत दैत्यों के अस्थि पुञ्ज से कैलाश पर्वत के समान श्वेत पर्वत का निर्माण करती है। वह आप सब के अभीष्ट फल को सद्यः सम्पन्न करे ।।२२।।

दग्धानां दानवानां सभसितनिचयैरस्थिभिः सर्वशुभ्रां
पृथ्वीं कृत्वापि भूयो नवरुधिरझरीकौतुकं कोणपेभ्यः ।
कुर्वाणं बाष्पपूरैः कुचतटघुसृणक्षालनैस्तद्वधूनाम्
पापं पापच्यमानं शमयतु भवतामस्त्रराजस्य तेजः ।।२३।।

अन्वय– दग्धानां दानवानां सभसितनिचयैः अस्थिभिः पृथ्वीं सर्वशुभ्रां कृत्वा भुयः सद्वधूनां कुचतटघुसृणक्षालनैः बाष्पपूरैः कौणपेभ्यः नवरुधिरझरी कौतुकं कुर्वाणं अस्त्रराजस्य तेजः भवतां पापच्यमानं पापं शमयतु ।।२३।।

अर्थ– जो दैत्य–दानवों को जला कर और उसकी भस्ममय अस्थियों द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी को श्वेत वर्ण की बना कर तथा उनकी स्त्रियों के कुचों में अनुलिप्त कुंकुम पङ्क को प्रक्षालन करने वाले अश्रु प्रवाह के साथ ही साथ, पिशाच दल के

लिए, अभिनव रुधिर धारा के प्रवाह का नाट्य रचता है। वह श्रीसुदर्शनचक्र के दिव्य तेज आप के पूर्ण परिपक्व पाप को शमन करे ।।२३।।

मा गान्मोषं ललाटानल इति मर्दनद्वेषिणा ध्यायतेव
स्रष्ट्रा प्रोन्निद्रवासाम्बुजदलपटलप्लोषमुत्पश्यतेव ।
वज्राग्निमस्मि नाशं वज्रदिति चकितेनेव शक्रेण बद्धैः
स्तोत्रैरस्त्रेश्वरस्य द्यतु दुरितशतं द्योतमाना द्युतिर्वः ।।२४।।

अन्वय– ललाटानल मोषं मा गादिति ध्यायतेव, मदनद्वेषिणा, प्रोन्निद्रवा-साम्बुजदलपटलप्लोषमुत्यश्यतेव, स्रष्ट्रा, वज्राग्निः नाशं मास्म वज्रदिति चकितेन इव शक्रेण, बद्धैः स्तोत्रैः द्योतमाना अस्त्रेश्वरस्य द्युतिः वः दुरितशतं द्यतु ।।२४।।

अर्थ– मस्तक की नेत्राग्नि कहीं शान्त न हो जाय इस आशंका से शंकरजी द्वारा तथा अपने निवासस्थान रूप, विकसित कमलदल के दग्ध हो जाने की आशंका से श्रीब्रह्मदेव एवम् अपने वज्राग्नि के शीतल पड़ जाने के भय से इन्द्रदेव द्वारा किये गये सुबुद्ध स्तोत्रों से प्रकाशमान श्रीसुदर्शन भगवान् की ज्वाला आपके सैकड़ों पापों को विनष्ट कर दे ।।२४।।

।। इति ज्वालावर्णनम् ।।

*****

शस्त्रास्त्रं शात्रवाणां शलभकुलमिव ज्वालया लेलिहाना
घोषैः स्वैः क्षोभयन्ती विघटितभगवद्योगनिद्रान्समुद्रान् ।
व्यूढोरःप्रौढचारत्रुटितपटुरटत्कीकसक्षुण्णदैत्या
नेमिः सौदर्शनी वः श्रियमतिशयिनीं दाशतादाशताब्दम् ।।२५।।

अन्वय– शात्रवाणां शस्त्रास्त्रं शलभकुलमिव ज्वालया लेलिहाना, स्वैः घोषैः विघटितभगवद्योगनिद्रान् समुद्रान् क्षोभयन्ती। व्यूढोरः प्रौढचारत्रुटितपटु-रटत्कीकसक्षुण्णदैत्या सौदर्शनी नेमिः वः अतिशयिनीं श्रियम्, आशताब्दाम्, दाशतात् (दद्यात्) ।।२५।।

अर्थ– शत्रुवर्ग के अस्त्र-शस्त्रों को जो इस प्रकार निगल कर विलीन कर लेती है, जैसे दीप पतंगे को और अपने भयङ्कर घोषों द्वारा भगवान् की योगनिद्रा के अधिष्ठान स्वरूप समुद्रों को विक्षुब्ध करती हुई तथा दैत्यों के विशाल वक्षःस्थल की हड्डियों को तोड़ कर जो उन्हें धूल में मिला देती है। वह श्रीसुदर्शनचक्र की नेमि, आपके लिए सहस्रों वर्षों तक उत्तम सम्पत्ति प्रदान करती रहे ।।२५।।

धारा चक्रस्य तारागणकपिशघृणिद्योतितद्युप्रचारा
पारावाराम्बुपूरक्वथनपिशुनितोत्तालपातालयात्रा ।
गोत्राद्रिस्फोटशब्दप्रकटितवसुधामण्डलीचण्डयाना
पन्थानं वः प्रदिश्यात्प्रशमनकुशला पाप्मनामात्मनीनम् ।।२६ ।।

अन्वय– तारागणकपिशघृणिद्योतितद्युप्रचारा, पारावाराम्बुपूरक्वथन पिशुनितोत्तालपातालयात्रा । गोत्राद्रिस्फोटशब्दप्रकटितवसुधामण्डली चण्डयाना, पाप्मना प्रशमनकुशला चक्रस्य धारा वः आत्मनीनं पन्थानं प्रदिश्यात् ।।२५।।

अर्थ– जो चक्रराज की नेमि अपने प्रकृष्ट प्रकाश से तारागण की किरणों को हतप्रभ एवम् पीली कर देती है और स्वयं पूर्ण प्रकाश से आकाश में स्वच्छन्द विचरती है। सामुद्रिक जलराशि की उत्तुङ्ग लहरें जिसकी निरंकुश पाताल यात्रा की सूचना देती रहती हैं। कुलाचल के फूटने का शब्द जिसकी भूमण्डल की भयङ्कर यात्रा का संकेत करता है। इस प्रकार स्वाश्रित वर्ग के पाप शमन में अतीव कुशल श्रीसुदर्शनचक्र की नेमि धारा आपको अभीष्ट मार्ग प्रदर्शन करे ।।२६।।

यात्रा वा त्रातलोका प्रकटितवरुणत्रासमुद्रे समुद्रे
सत्त्वासत्त्वासहोष्णा कृतसगरुदगस्पन्ददानाददाना ।
हानिं हा निन्दतानां जगति परिषदां दानवीनां नवीनाम्
चक्रे चक्रेशनेमिः शममुपहरतु सप्रभावप्रभा वः ।।२७।।

अन्वय– त्रातलोका वा यात्रा, प्रकटितवरुणत्रासमुद्रे यात्रा, आददाना, सत्त्वासत्त्वासहोष्णा कृतसगरुदगस्पन्ददाना । जगति निन्दतानां दानवीनां परिषदां नवीनां हानिं चक्रे, सप्रभावप्रभा चक्रेशनेमिः वः शमं उपहरतु ।।२७।।

अर्थ– जिसकी यात्रा से लोक रक्षण प्राप्त होता है और जिसकी यात्रा समुद्र के विक्षोभ द्वारा वरुण देव को भी भय से सशंकित कर देती है। जो अपने असह्य प्रताप द्वारा जड़ एवम् चेतनों को विकल बना कर सपक्ष पर्वतों को भी प्रकम्पित कर उन्हें उड़ जाने के लिए विवश कर देती है। इस प्रकार संसार के निन्दनीय दानव समाज के लिए नित्य प्रति नई–नई हानि करने वाली, अद्भुत प्रभावशाली, वह श्रीसुदर्शनचक्र की नेमि आपके लिए शान्ति का उपहार दे ।।२७।।

यत्रामित्रान्दिधक्षौ प्रविशति बलिनो धाम नि:सीमधाम्नि
ग्रस्तापस्तापशीर्णैः प्रगुणितसिकतो मौक्तिकैः शौक्तिकेयैः ।
राशिर्वारामपारां प्रकटयति पुनर्वैरिदाराश्रुपूरैः,
वृद्धिं निर्याति निर्यापयतु स दुरितान्यस्त्रराजप्रधिर्वः ।।२८।।

अन्वय– निस्सीमधाम्नि अमित्रान्, दिधक्षौ बलिनो धाम प्रविशति सति ग्रस्तापः (प्रपीताम्बुपूरः) शौक्तिकेयैः मौक्तिकैः, प्रगुणितसिकतः, वारांराशिः, वैरिदाराश्रुपूरैः पुनः अपरां वृद्धिं प्रकटयति सोऽस्त्रराजप्रधिः वः दुरितानि, निर्यापयतु (दूरीकरोतु) ।।२८।।

अर्थ– जो अपने असीम तेज में, अपने शत्रु दैत्य-दानवों को डालने की इच्छा से जब वह बलि के लोक में प्रवेश करती है, तो उसके तेज से समुद्र का जल शुष्क हो जाता है और तब फिर सीपियों से उत्पन्न मोतियों के समूह बालुका की राशि के सदृश दिखाई पड़ने लगते हैं। परन्तु दानवों के मारे जाने पर रोती हुई उनकी स्त्रियों के शोकाश्रु जल द्वारा वह समुद्र फिर अगाध जल से भर जाता है। ऐसे सामर्थ्य वाली श्रीसुदर्शनचक्र की वह नेमि आपके पापों को नष्ट कर दे ।।२८।।

कक्ष्यातौल्येन कद्रूतनयफणमणीन्कल्यदीपस्य युञ्जन्
पातालान्तःप्रपाती निखिलमपि तम स्वेन धाम्ना निगीर्य ।
दैतेयप्रेयसीनां वमति हृदि हतप्रेयसां भूयसां य–
श्चक्राग्रीयाग्रदेशो दहतु विलसितं भूयसामंहसां वः ।।२९।।

अन्वय– यः चक्रप्रधिः पातालान्तःप्रपाती स्वेन धाम्ना निखिलमपि तमः निगीर्य, कद्रूतनयफणमणीन् कल्पदीपस्य कक्षातौल्येन युञ्जन्। हतप्रेयसां दैतेयप्रेयसीनां हृदि वमति। असौ जक्राग्रीयाग्रदेशः (प्रधिः) वः भूयसाम्, अंहसां विलसितं बहु दहतु ।।२९।।

अर्थ– जो चक्रप्रधि पाताल लोक में प्रवेश करके अपने तेज द्वारा वहाँ के समस्त अन्धकार को पी डालती है। तथा वहाँ के सर्पों के फणों की मणियों को भी प्रभातकाल के निष्प्रभ दीप के सदृश कान्तिहीन कर देती हैं और फिर उसी अन्धकार को पतियों के मर जाने पर विधवा बनी, उन्हीं दैत्यों की स्त्रियों के हृदय में बमन भी कर देती है। वह चक्र नेमि आप सबके बहुसंख्यक पापों के विपाक को अच्छी तरह भस्म कर दे ।।२९।।

कृष्णाम्भोदस्य भूषा कृतनयनयनव्याहतिर्भार्गवस्य
प्राप्तमावेदयन्ती प्रतिभटसुदृशामुद्धटां वाष्पवृष्टिम् ।
निष्टप्ताष्टापदश्रीः सममममरचमूगर्जितैरुज्जिहाना
कीर्तिं वः केतकीभिः प्रथयतु सदृशीं चञ्चला चक्रधारा ।।३०।।

अन्वय– कृष्णाम्भोदस्य भूषा भार्गवस्य कृतनयनयनव्याहतिः प्रतिभट–सुदृशां, उद्धटां वाष्पवृष्टिं, आवेदयन्ती, निष्टप्ताष्टापदश्रीः, अमरचमूगर्जितैः समम्, उज्जिहाना । सा चञ्चला चक्रधारा केतकीभिः सदृशीं वः कीर्तिं प्रथयतु ।।३०।।

अर्थ– श्यामघन की छटा वाले भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र को अलंकृत करने वाली एवम् परशुराम की नीति तथा शुक्राचार्य के नेत्र को नष्ट करने वाली, तथा दैत्य–दानवों की स्त्रियों के नेत्रों से प्रकृष्ट अश्रुधारा को बहाती हुई स्वयं तप्त सुवर्ण के सदृश शोभायमान, देव सेना के घोष के साथ ही साथ जो प्रकट हुआ करती है। वह चञ्चला चक्रधारा केतकी के स्वच्छ पुष्प के समान आपकी कीर्ति को विकसित करे ।।३०।।

वप्राणा भेदिनी यः परिणतिमखिलश्लाघनीयां दधानः
क्षुण्णां नक्षत्रमालां दिशि दिशि विकिरन्विद्युता तुल्यकक्ष्यः।
निर्याणेनोत्कटेन प्रकटयति नवं दानवारिप्रकर्षं
चक्राधीशस्य भद्रो वशयतु भवतां स प्रधिश्चित्तवृत्तिम् ।।३१।।

अन्वय– यः वप्राणां भेदिनी, अखिलश्लाघनीयां परिणतिं दधानः । क्षुण्णां नक्षत्रमालां दिशि दिशि विकिरन्, विद्युता तुल्यकक्ष्यः उत्कटेन निर्याणेन नवं दानवारि प्रकर्षं प्रकटयति चक्राधीशस्य सः भद्रः प्रधिः भवतां चित्तवृतिं वशयतु ।।३१।।

अर्थ– जो बड़े–बड़े प्राकार एवम् तत्सदृश शरीर वाले शत्रु समूह का विघटन करती और अप्रकृत दिव्य पुरुष विग्रह से भिन्न विचित्र चक्राकार रूप धारण करती है तथा नक्षत्र मण्डल को छिन्न–भिन्न करके प्रत्येक दिशाओं में बिखेरती हुई अपने स्वयं विद्युत् के सदृश चञ्चल रूप में प्रकाशित होती है। जो अपने प्रकृष्ट वेग वाले प्रयाण के द्वारा भगवान् के अभिनव महत्व को प्रकट करती है। वह श्रीचक्रराज की दिव्यनेमि आपकी चित्तवृत्ति को शान्त तथा वश में करे ।।३१।।

**नाकौकः शत्रुजत्रुत्रुटनविघटितस्कन्धनीरन्ध्रनिर्यन्
नव्यक्रव्यास्रहव्यग्रसनरसलसज्ज्वालजिह्वालवह्निम् ।
यं दृष्ट्वा सांयुगीनं पुनरपि विदधत्याशिषो वीर्यवृद्ध्यै
गीर्वाणा निर्वृणाना वितरतु स जयं विष्णुहेतिप्रधिर्वः ।।३२।।**

अन्वय– नाकौकः शत्रुजत्रुत्रुटनविघटितस्कन्धनीरन्ध्रनिर्यन् नव्यक्रव्यास्र–हव्यग्रसनरसलसज्ज्वालजिह्वालवह्निम् । सांयुगीनं यं दृष्ट्वा निर्वृणानां गीर्वाणा पुनरपि वीर्यवृद्ध्यै आशिषः विदधति स विष्णुहेतिप्रधिः वः विजयं वितरतु ।।३२।।

अर्थ– असुरों के जत्रु (कन्धे) की हड्डी के टूट जाने से निरन्तर निकलने वाली नवीन माँस युक्त जो शोणित धारा, जिसको हव्य के समान रस युक्त भक्षण करने से जिसकी ज्वाला स्वरूप जिह्वा सुपुष्ट हो गई है। एवम् संग्रामभूमि में विराजमान श्रीसुदर्शन भगवान् को देख कर अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक देव मण्डल, जिनकी शौर्यवृद्धि के लिए पुनः पुनः शुभकामना किया करते हैं। उन श्रीचक्रराज की कल्याणप्रद नेमि आपको सर्वदा विजय प्रदान करे ।।३२।।

**धन्वाध्वन्यस्य धारासलिलमिव धनं दुर्गतस्येव दृष्टि–
र्जात्यन्धस्येव पङ्गोः पदविहृतिरिव प्रीणनी प्रेमभाजाम् ।
पत्युर्माया क्रियायां प्रकटपरिणतिर्विश्वरक्षाक्षमायाम्
मायामायामिनीं वस्त्रुटयतु महती नेमिरस्त्रेश्वरस्य ।।३३।।**

अन्वय– धन्वाध्वन्यस्य धारासलिम्मिव, दुर्गतस्य धनमिव, जात्यन्धस्य दृष्टिरिव पङ्गोः पदविहृतिरिव, प्रेमभाजां प्रीणनी, पत्युः प्रकटपरिणतिः, अस्त्रेश्वरस्य महती नेमिः वः, आयामिनीं मायां त्रुटयतु ।।३३।।

अर्थ– जो मरुभूमि के पथिक के लिए, प्रवाही जल के सदृश है तथा निर्धन को धन, जन्मान्ध को सुन्दर दृष्टि, पंगु को उत्तम पदविहार एवम् भक्तों के लिए आनन्द रूप है। इसी प्रकार जो भगवान् के भी विलास के लिए चक्रस्वरूप है। वह श्रीअस्त्रराज की विचित्र नेमि आपकी अनर्थप्रद अविद्या को नष्ट करे ।।३३।।

**त्राणं या विष्टपानां वितरति च यया कल्प्यते कामपूर्ति–
र्नस्थातुं यत्पुरस्तात्प्रभवति कलयाप्यौषधीनामधीशः ।
उन्मेषो याति यस्या न समयनियतिं साश्रियं वः प्रदेया–
न्नक्कृत्य द्योतमाना त्रिपुरहरदृशं नेमिरस्त्रेश्वरस्य ।।३४।।**

अन्वय– या चक्रनेमिः जगतां त्राणं वितरति, यया कामपूर्तिश्च कल्प्यते। यत्पुरस्तात्, औषधीनामधीशः, कलयापि स्थातुं न प्रभवति। यस्याः, उन्मेषः समयनियतिं न याति, त्रिपुरहरदृशं द्योतमाना सा अस्त्रेश्वरस्य नेमि वः श्रियं प्रदेयात् ।।३४।।

अर्थ– जो विश्व का संरक्षण करती है। जिसके द्वारा उपासकों की अभीष्ट सिद्धि होती है तथा कामादि शत्रु भी निवृत्त हो जाते हैं। जिसके समक्ष चन्द्रमा क्षणमात्र भी नहीं रुक सकता तथा जिसका उदयकाल अनियत रहता है। इस प्रकार श्रीशंकरजी के तृतीय नेत्र को भी हतप्रभ कर देने वाली श्रीचक्रराज की वह नेमि आपको ऐश्वर्य प्रदान करे ।।३४।।

नक्षत्रक्षोदभूतिप्रकरविकिरणश्वेतिताशावकाशा
जीर्णैः पर्णैरिव द्यां जलधरपटलैश्चूर्णितैरूर्णुवाना।
आजावाजानवाजानतरिपुजनतारण्यमावर्तमाना
नेमिर्वात्येव चाक्री प्रणुदतु भवतां संहतं पापतूलम् ।।३५।।

अन्वय– नक्षत्रक्षोदभूतिप्रकरविकिरणश्वेतिताशावकाशा, जीर्णैःपर्णैः चूर्णितैरिव जलधरपटलैः द्यामूर्णुवाना (आच्छादयन्ती) आजौ, आजानवाजान–तरिपु जनतारण्यमावर्त्तमाना। चाक्री नेमिः वात्येव भवतां संहतं पापतूलं प्रणुदतु ।।३५।।

अर्थ– जिसने नक्षत्ररूप भस्मराशि को विखेर कर और दिशाओं के मध्य भाग को श्वेत वर्ण कर दिया है तथा अपने वेग के कारण उड़े हुए प्राचीन पत्र स्वरूप मेघ घटाओं से आकाश मण्डल को आवृत कर रखा हैं। जो युद्धभूमि में अपने सहज वेग द्वारा जङ्गलरूप शत्रुओं को झुका–झुका कर उन्हीं के बीच में स्वतन्त्र संचरण करती है। वह श्रीचक्रराज की नेमि वात्त्या (बवण्डर) के सदृश आपके पाप पुञ्ज को रुई के समान उड़ा दे ।।३५।।

क्षिप्त्वा नेपथ्यशाटीमिव जलदघटां जिष्णुकोदण्डचित्रां
तारापुञ्जं प्रसूनाञ्जलिमिव विपुले व्योमरङ्गे विकीर्य।
निर्वेदग्लानिचिन्ताप्रभृतिपरवशानन्तरा दानवेन्द्रान्
नृत्यन्नानालयाढ्यं नट इव तनुतां शर्म चक्रप्रधिर्वः ।।३६।।

अन्वय– जिष्णुकोदण्डचित्रां जलदघटां, नेपथ्यशाटीमिव क्षिप्त्वा विपुले

व्योमरङ्गे तारापुञ्जं प्रसूनाञ्जलिमिव, विकीर्य, निर्वेदग्लानिचिन्ता प्रभृति-परवशान् दानवेन्द्रान्, अन्तरा नानालयाढ्यं नट इव नृत्यन्, चक्रप्रधिः वः शर्म तनुताम् ।।३६।।

अर्थ– जो इन्द्रधनुष की तरह चित्र-विचित्र जलद घटा को नाट्यमञ्च के परदे के सदृश खोल कर विशाल आकाश मण्डल में तारापुञ्ज की पुष्पाञ्जलि विखेरती रहती है तथा विषादग्लानि-चिन्ता आदि के वशीभूत बड़े-बड़े दानवेन्द्रों के मध्य में विविध प्रकार की नाट्यकला में निपुण नट के सदृश नृत्य किया करती है। वह श्रीचक्रेश भगवान् की नेमि आपके सुख को विस्तृत करे ।।३६।।

दौर्गत्यप्रौढतापप्रतिभटविभवा वित्तधाराः सृजन्ती
गर्जन्ती चीत्क्रियाभिर्ज्वलदनलशिखोद्दामसौदामनीका ।
अव्यात्क्रव्याद्वधूटीनयनजलभरैर्दिक्षु नव्याननाव्यान्
पुष्यन्ती सिन्धुपूरान्रथचरणपतेर्नेमिकादम्बिनी वः ।।३७।।

अन्वय– दौर्गत्यप्रौढ़तापप्रतिभटविभवा, वित्तधाराः सृजन्ती चीत्क्रियाभिः गर्जन्ती, ज्वलदनलशिखोद्दामसौदामनीका। क्रव्याद्वधूटीनयनजलभरै, नव्यान्, अनाव्यान् सिन्धुपूरान् दिक्षु पुष्यन्ती, रथचरणपतेः नेमिकादम्बिनी वः अव्यात् ।।३७।।

अर्थ– जो दरिद्रता के प्रकृष्ट दुःख को निराकरण करने की शक्ति से सम्पन्न है और विविध धनधान्य की वर्षा किया करती है। जिसकी गर्जना भयङ्कर चीत्कार के साथ होती है। जाज्वल्यमान अग्निज्वाला ही जिसकी चमकीली बिजली है और जो दैत्यों की विधवा स्त्रियों के शोकाश्रु द्वारा नये-नये अगाध समुद्र प्रवाह को प्रत्येक दिशाओं में बढ़ाती रहती है। वह चक्रनेमि स्वरूप मेघमाला आपकी रक्षा करे ।।३७।।

सन्दोहं दानवानामजसजमिवालभ्य जाज्वल्यमाने
वह्नावह्नाय जुह्वत्त्रिदशपरिषदे स्वस्वभागप्रदायी ।
स्तोत्रैर्ब्रह्मादिगीतैर्मुखरपरिसरं श्लाघ्यशस्त्रप्रयोगं
प्राप्तः संग्रामसत्रं प्रधिरसुररिपोः प्रार्थितं प्रस्नुतां वः ।।३८।।

अन्वय– ब्रह्मादिगीतैः स्तोत्रैः मुखरपरिसरं श्लाघ्यशस्त्रप्रयोगं, संग्रामसत्रं प्राप्तः। अजसमजमिव दानवानां सन्दोहमालभ्य जाज्वल्यमाने वह्नौ, अह्नाय

(शीघ्र) जुह्वत् त्रिदशपरिषदे, स्वस्थभागप्रदायी, असुररिपोः प्रधिः वः प्रार्थितं प्रस्नुताम् ।।३८।।

अर्थ– ब्रह्मा रुद्र प्रभृति देवों से गाये गये एवम् सुन्दर शब्दावली से प्रशंसित तथा प्रख्यात शस्त्र प्रयोग वाले संग्राम यज्ञ में प्रवेश कर जो दानव सैन्य को बकरों के झुण्ड की तरह काट-काट कर, प्रचण्ड अग्निज्वाला में उनकी अतिशीघ्र आहुति देती हुई समस्त देवताओं को यथायोग्य उनका भाग प्रदान करती है। वह श्रीसुदर्शन भगवान् की चक्रनेमि आपके लिए प्रार्थित पदार्थ सम्पन्न करे ।।३८।।

।। इति नेमिवर्णनम् ।।

*****

अथारवर्णनम्

उत्पातालातकल्पान्यसुरपरिषदामाहवप्रार्थिनीना-
मध्वानध्वावबोधक्षपणचणतमः क्षेपदीपोपमानि ।
त्रैलोक्यागारभारोद्वहनसहमणिस्तम्भसम्पत्सखानि
त्रायन्तामन्तिमायां विपदि सपदि वोऽराणि सौदर्शनानि ।।३९ ।।

अन्वय– आहवप्रार्थिनीनामसुरपरिषदान् उत्पातालातकल्पानि अध्वानध्यावबोधक्षपणचणतमः क्षेपदीपोपमानि, त्रैलोक्यागारभारोद्वहनसह-मणिस्तम्भसम्पत्सखानि, सौदर्शनानि अराणि वः अन्तिमायां विपदि सपदि त्रायन्ताम् ।।३९।।

अर्थ– संग्राम के लिए उत्सुक दैत्य समूह के विनाशार्थ, जो उत्पात सूचक, अलात (उल्मुक) के समान हैं। एवम् मार्ग तथा अमार्ग के अप्रकाशक घने अन्धकार की निवृत्ति के लिये दीप सदृश हैं। तथा त्रिलोक रूप विशाल भवन के भार वहन करने में जो मणि स्तम्भ की सामर्थ्य रखते हैं। इस प्रकार के श्रीसुदर्शन भगवान् के अर समूह, प्राणान्त के समय आने वाली आपकी अन्तिम विपत्ति के समय अति शीघ्र परित्राण करें ।।३९।।

ज्वालाजालप्रवालस्तवकितशिरसो नाभिमावालयन्त्यः
सिक्ता रक्ताम्बुपूरैः शकलितवपुषां शात्रवानीकिनीनाम् ।
चक्राक्रीडप्ररूढाभुजगशयभुजोपघ्ननिघ्नप्रचारा
पुष्प्यन्त्यः कीर्तिपुष्पाण्यरकनकलताः प्रीतये वः प्रथन्ताम् ।।४०।।

अन्वय– चक्राक्रीडप्ररूढा नाभिमावालयन्त्यः, शकलितवपुषां शात्रवानीकिनीनाम्, रक्ताम्बुपूरैः सिक्ता। भुजगशयभुजोपघ्ननिघ्नप्रचारा, ज्वालाजालप्रवालस्तवकितशिरसः, कीर्तिपुष्पाणि पुष्प्यन्त्यः, अरकनकलताः, वः प्रीतये प्रथन्ताम्।।४०।।

अर्थ– जो चक्रस्वरूप उद्यान की नाभिरूप आलवाल (क्यारी) में उत्पन्न हुई हैं। तथा युद्ध में छिन्न–भिन्न शरीर वाले दैत्य सेना के रक्त प्रवाह द्वारा सिञ्चित की गई हैं। शेषशायी भगवान् के भुजदण्ड के आलम्बन द्वारा जरा संचरण किया करती हैं। जिनका अग्रभाग ज्वाला समूह रूप प्रवाल के स्तवक (गुच्छे) से सुशोभित रहा करता है। इस प्रकार कीर्ति रूप पुष्पों को विकसित करने वाली श्रीसुदर्शनराज की अररूप स्वर्ण लतायें आपकी प्रसन्नता के लिए प्रवृद्ध होती रहें।।४०।।

ज्वालाजालाब्धिमुद्रं क्षितिवलयमिवाबिभ्रती नेमिचक्रम्
नागेन्द्रस्येव नाभेः फणपरिषदिव प्रौढरत्नप्रकाशा।
दद्यात् वो दिव्यहेतेर्मतिमरवितति: ख्यातसाहस्रसंख्या
संख्यावत्सङ्घचित्तश्रवणहर गुणस्यन्दिसन्दर्भगर्भाम्।।४१।।

अन्वय– ज्वालाजालाब्धिमुद्रं नेमिचक्रं क्षितिवलयमिव बिभ्रती, नागेन्द्रस्य इव, नाभेः फणपरिषत्, इव, ख्यातसाहस्रसंख्या, प्रौढरत्नप्रकाशा, दिव्यहेते, अरवितति:, संख्यावत्सङ्घचित्तश्रवणहरगुणस्यन्दिसन्दर्भगर्भां वः मतिं दद्यात्।।४१।।

अर्थ– जो प्रकाशमान ज्वाला समूहात्मक समुद्ररूप सीमा चिह्न से विशिष्ट नेमिचक्र को भूवलय के सदृश धारण करती है। तथा जो कुण्डलीभूत शेषनाग के सदृश एवम् उनके फण समूह के समान स्थित है। जो सहस्र संख्या से सुशोभित होती हुई सुन्दर रत्नप्रभा से प्रकाशित रहती है। वह चक्रेश की अर परम्परा ज्ञानियों के भी चित्त एवम् श्रवण को आकृष्ट करने वाले दिव्य गुणों की प्रवाहमयी बुद्धि आपको प्रदान करे।।४१।।

ब्रह्मेशोपक्रमाणां बहुविधविमतक्षोदसम्मोदितानां,
सेवायै देवतानां दनुजकुलरिपोः पिण्डिकाद्यङ्गभाजाम्।
तत्तद्धामान्तसीमाविभजनविधये मानदण्डायमाना
भूमानं भूयसां वो दिशतु दशशती भास्वराणामराणाम्।।४२।।

अन्वय– बहुविधविमतक्षोदसम्मोदितानां, दनुजकुलरिपोः पिण्डिका-द्यङ्गभाजाम्, ब्रह्मेशोपक्रमाणाम्, देवतानाम्, तत्तद्धामान्तसीमाविभजनविधये मानदण्डायमाना, भूयसां भास्वराणामराणां दशशती वो भूमानं दिशतु।।४२।।

अर्थ– जिनका चित्त अनेक प्रकार के शत्रुवर्ग को निरस्त कर देने से सुप्रसन्न रहा करता है तथा दैत्यों के संहारक श्रीसुदर्शन भगवान् के नाभि आदि अङ्गों के सेवक ब्रह्मा प्रभृति देवताओं के निवासस्थान की सीमा विभाग के निर्णय में जो मानदण्ड का कार्य करते हैं। एवम्भूत दिव्य प्रकाश से सम्पन्न श्रीचक्रराज के सहस्रों अर आपके महत्व को बढ़ावें।।४२।।

ज्वालाकल्लोलमालानिबिडपरिसरां नेमिवेलां दधाने
पूर्वेणाक्रान्तमध्ये भुवनमयहविर्भोजिना पूरुषेण।
प्रस्फूर्जत्प्राज्यरत्ने रथपदजलधावेधमानैः स्फुलिङ्गैः
भद्रं वो विद्रुमाणां श्रियमरविततिर्विस्तृणाना विधत्ताम्।।४३।।

अन्वय– ज्वालाकल्लोलमालानिबिडपरिसरां, नेमिवेलां दधाने, भुवनमयहविर्भोजिना पूरुषेण, आक्रान्तमध्ये, प्रस्फूर्जत्प्राज्यरत्ने रथपदजलधौ अरविततिः, एधमानैः स्फुलिङ्गैः विद्रुमाणां श्रियं विस्तृणाना वः भद्रं विधत्ताम्।।४३।।

अर्थ– जिसने अपनी ज्वालाओं की पंक्तियों से घनीभूत प्रदेश वाले नेमिरूप तट को धारण कर रखा है और ब्रह्माण्ड स्वरूप हव्य के भोक्ता आदि पुरुष श्रीसुदर्शन भगवान् जिसके मध्यभाग में अधिष्ठित हैं तथा जो चमकीले विशिष्ट रत्नों से भरपूर है। उस श्रीसुदर्शन रूप समुद्र में अरों की पंक्तियाँ अपने प्रवृद्ध स्फुलिङ्गों से प्रवाल (मूँगा) समूह की शोभा को प्रकट करती हुई आपको कल्याण प्रदान करें।।४३।।

नासीरस्वैरभग्नप्रतिभटरुधिरासारधारावसेका-
नेकान्तस्मेरपद्मप्रकरसहचरच्छायया प्राप्य नाभ्या।
मुक्तानीवांकुराणि स्फुरदनलशिखादर्शितप्राक्प्रवाला-
न्यव्याघातेन भव्यं प्रददतु भवतां दिव्यहेतेरराणि।।४४।।

अन्वय– नासीरस्वैरभग्नप्रतिभटरुधिरासारधारावसेवकान्, प्राप्य एकान्त-स्मेरपद्मप्रकरसहचरच्छायया मुक्तानि, अङ्कुराणि इव स्फुरदनलशिखादर्शित

प्राक्प्रवालानि, दिव्यहेतेःअराणि भवताम् अव्याघातेन भव्यं प्रददतु ।।४४।।

अर्थ– जो निर्लज्जता पूर्वक भगे हुए प्रतिभट, सेनापतियों की रुधिर धारा से सिञ्चित होकर, एवम् नियम से प्रफुल्लित कमलपुञ्ज के सदृश कान्ति वाली नाभि रूप (क्यारी) से उत्पन्न होने वाले अंकुर के सदृश प्रतीत होते हैं। तथा प्रज्ज्वलित अग्निशिखा की तरह प्रकाशित रक्त किसलय को धारण करने वाले हैं। ऐसे श्रीसुदर्शनचक्र के अर समूह आप सबको निर्विघ्न मङ्गल प्रदान करे ।।४४।।

दावोल्कामण्डलीव द्रुमगणगहने बाडवस्येव वह्ने–
र्ज्वालावृद्धिर्महाब्धौ प्रवयसि तमसि प्रातरर्कप्रभेव ।
चक्रे या दानवानां हयकरटिघटासङ्कटे जाघटीति
प्राज्यं सा वः प्रदेयात्पदमरपरिषत्पद्मनाभायुधस्य ।।४५।।

अन्वय– या सुदर्शनारपरिषत्, द्रुमगुणगहने, दावोल्कामण्डलीव, महाब्धौ वाढवस्य वह्नेः ज्वालावृद्धिरिव, प्रवयसि तमसि प्रातरर्कप्रभा, इव, हयकरटिघटासङ्कटे दानवानां चक्रे, जाघटीति (चेष्टते) पद्मनाभायुधस्य सा अरपरिषत् भवताम्, आज्यं पदं प्रदेयात् ।।४५।।

अर्थ– जो वृक्ष समूह के दुःप्रवेश सघन वन में दावानल ज्वाला के समान और समुद्र में वाडवाग्नि ज्वाला की तरह तथा प्रकृष्ट अन्धकार में प्रातःकालीन सूर्यप्रभा के सदृश प्रतीत होते हैं एवम् जो अश्व तथा गजेन्द्रों से परिपूर्ण दानव सैन्य को आक्रान्त करके त्रस्त करती रहती है। वह श्रीसुदर्शन भगवान् की अर पंक्ति आपको श्रेष्ठपद प्रदान करे ।।४५।।

तापाद्दैत्यप्रतापातपसमुचितात्त्रायमाणं त्रिलोकीं
लोलैर्ज्वालाकलापैः प्रकटयदभितश्चीनपट्टाञ्चलानि ।
छत्राकारं शलाका इव कनककृताः शौरिदोर्दण्डलग्नं
भूयासुर्भूषयन्त्यो रथचरणमरस्फूर्तयः कीर्तये वः ।।४६।।

अन्वय– दैत्यप्रतापातपसमुचितात् तापात् त्रिलोकीं त्रायमाणं, अभितः लोलैः ज्वालाकलापैः चीनपट्टाञ्चलानि प्रकटयन्, शौरिदोर्दण्डलग्नं छत्राकारं रथचरणं भूषयन्त्यः कनककृताः शलाका इव प्रतीयमानाः अरस्फूर्तयः, वः कीर्तये भूयासुः ।।४६।।

अर्थ– दैत्य-दानवों के प्रतापी तेज की ज्वाला से आक्रान्त त्रिलोक के

रक्षण में तत्पर, तथा अतीव चञ्चल एवम् प्रसरणशील ज्वाला समूह द्वारा छत्र में लगी हुई चमकीली झालरों के सौन्दर्य को जो सर्वदा प्रकट करती रहती हैं। भगवान् के भुजदण्ड में विराजमान श्रीसुदर्शनचक्र की छत्र के रूप में सुशोभित करती हुई सुवर्ण की शलाकाओं की तरह सुन्दर लगने वाली उन अर का प्रकाश आपके यश को बढ़ावे ।।४६।।

नाभीशालानिखातां नहनसमुचितां वैरिलक्ष्मीवशानां
संयद्वारीहृतानां समनुविदधती काञ्चनालानपंक्तिम् ।
राज्या च प्राज्यदैत्यव्रजविजयमहोत्तम्भितानां भुजानां–
तुल्या चक्रारमाला तुलयतु भवतां तूलवच्छ्त्रुलोकम् ।।४७।।

अन्वय– संयद्वारीहृतानां, वैरिलक्ष्मीवशानां, नहनसमुचितां नाभिशाला–निखातां काञ्चनालानपंक्तिं, समनुविदधतीं प्राज्यदैत्यव्रजविजयमहोत्तम्भितानां भुजानां राज्या तूल्या, चक्रारमाला, भवतां शत्रुलोकं तूलवत् तुलयतु ।।४७।।

अर्थ– जो संग्राम स्वरूप वारी (गजवन्धिनी) गर्त से निकली हुई शत्रु सम्पत्ति रूप हरिनी के बन्धन के योग्य, नाभिरूप गजशाला में अच्छी तरह गाड़ी हुई सुवर्णमय गजबन्धन स्तम्भ पंक्ति के सदृश प्रतीत होती है। तथा बड़े–बड़े भयङ्कर दैत्य समूह पर विजय प्राप्त कर लेने के महोत्सव से उन्मत्त भुजदण्डों की पंक्ति के सदृश जो दिखाई पड़ती है। श्रीसुदर्शनचक्र के अरों की वह माला आपके शत्रु समूह को तूल (रुई) के सदृश निर्मूल कर दे ।।४७।।

आनेमेश्चक्रवालात्त्विष इव वितताः पिण्डिकाचण्डदीप्ते–
र्दीप्ता दीपा इवाराद्गहनरणतमीगाहिनः पूरुषस्य ।
शाणे रेखायितानां रथचरणमये शत्रुशौण्डीर्यहेम्नां
रेखाः प्रत्यग्रलग्ना इव भुवनमरश्रेणयः प्रीणयन्तु ।।४८।।

अन्वय– आनेमेश्चक्रवालात्, त्विष इव वितताः पिण्डिकाचण्डदीप्तेः गहनरणतमीगाहिनः पुरुषस्य, आरात् प्रदीप्ताः दीपा इव रथचरणमये शाणे रेखायितानाम्, शत्रुशौण्डीर्यहेम्नां प्रत्यग्रलग्नाः रेखा इव (स्थिताः) अरश्रेणयः भुवनं प्रीणयन्तु ।।४८।।

अर्थ– जो नेमिरूप लोकालोक पर्वत पर्यन्त, नाभि स्वरूप सूर्य की किरणों के सदृश व्याप्त हैं। तथा दुष्प्रवेश संग्राम रूप अँधेरी रात्रि में सञ्चरण करने वाले

श्रीसुदर्शन पुरुष के समीप में अन्धकार विघटनार्थ प्रदीप्त की ज्वाला का कार्य करती हैं एवम् चक्र नामक शाण (कसौटी) के ऊपर संघर्षित शत्रुवर्ग के मदरूप सुवर्ण की रेखाओं के समान चमकती रहती हैं। इस प्रकार चक्र की अर श्रेणियाँ समस्त लोक को सुप्रसन्न करें।।४८।।

दीप्तैरर्चिः प्ररोहैर्दलवति विधृते बाहुनालेन विष्णो–
रुद्यत्प्रद्योतनाभं प्रथयति पुरुषं कर्णिकावर्णिकायाम्।
चूडालं वेदमौलिं कलयति कमले चक्रनाम्नोपलक्ष्ये
लक्ष्मीं स्फारामराणि प्रतिविदधतु वः केसरश्रीकराणि।।४९।।

अन्वय– दीप्तैरर्चिप्ररोहैर्दलवति, विष्णोर्बाहुनालेन विधृते, उद्यत्प्रद्योतनाभं पुरुषं कर्णिकावर्णिकायां प्रथयति। चूडालं वेदमौलिं कलयति, चक्रनाम्नोपलक्ष्ये कमले केसरश्रीकराणि अराणि वः स्फारां(प्रकाशमानां) श्रियं प्रतिविदधतु।।४९।।

अर्थ– प्रकाशमान ज्वाला के अंकुर पुञ्ज जिसके सदृश हैं और जो भगवान् विष्णु के बाहुरूपी नाल में सम्बद्ध हैं। उदयकालीन सूर्यप्रभा के समान तेजस्वी श्रीसुदर्शन पुरुष में जो कर्णिका के आकार में प्रकाशित होते हैं। शास्त्र शिरोमणि वेदान्त तत्त्व जिसके परिमल के समान हैं। ऐसे कमल पुष्प के केसर के सदृश सुशोभित श्रीसुदर्शन पुरुष के अर समूह आपको प्रकाशमान लक्ष्मी प्रदान करें।।४९।।

धातुस्यन्दैरमन्दैः कलुषितवपुषो निर्झराम्भः प्रपाता–
नर्चिष्मत्या स्वमूर्त्या रथचरणगिरेर्नेमिनाभीतटस्य।
व्याकुर्वाणारपंक्तिर्वितरतु विभुताविस्तृतिं वित्तकोटी–
कोटीरच्छत्रपीठीकटककरिघटाचामरस्रग्विणीं वः।।५०।।

अन्वय– नेमिनाभीतटस्य रथचरणगिरेः अरपंक्तिः अमन्दैः धातुस्यन्दैः कलुषितवपुषोनिर्झराम्भः प्रपातान्; अर्चिष्मत्या स्वमूर्त्या व्याकुर्वाणा; वित्तकोटीकोटीरच्छत्रपीठीकटककरिघटाचामरस्रग्विणीं विभुताविस्तृतिं वः वितरतु।।५०।।

अर्थ– जिस सुदर्शन रूप पर्वत के नेमि और नाभि, ये दोनों तट जैसे हैं। जिसकी अर पंक्ति बड़े वेग वाले गैरिक धातु प्रवाह के संसर्ग द्वारा रक्तवर्ण को प्राप्त हो गये निर्झर जल प्रवाहों को अपनी प्रदीप्त कान्ति द्वारा जपा पुष्प के सदृश, विस्तृत रूप में व्यक्त करती हैं। वह आपके लिए कोटि–कोटि द्रव्य–छत्र–दिव्य

सिंहासन और सुवर्ण–रत्न तथा गजसमूह एवम् चमर–माला आदि विविध वैभव राशि वितरण करे ।।५०।।

।। इत्यरवर्णनम् ।।

*****

अथ नाभिवर्णनम्

ऐक्येन द्वादशानामशिशिरमहसां दर्शयन्ती प्रवृत्तिं
दत्तः स्वर्लोकलक्ष्म्यास्तिलक इव मुखे पद्मरागद्रवेण ।
देयाद्दैतेयदर्पक्षतिकरणरणप्रीणिताम्भोजनाभि–
र्नाभिर्नाभित्वमुर्व्याः सुरपतिविभवस्पर्शि सौदर्शनी वः ।।५१।।

अन्वय– द्वादशानामशिशिरमहसाम्, ऐक्येनसञ्जातां प्रवृत्तिं दर्शयन्तीमिव दैतेयदर्पक्षतिकरणरणप्रीणिताम्भोजनाभिः स्वर्लोक लक्ष्म्याः मुखे पद्मरागद्रवेण दत्तस्तिलक इव स्थिता सौदर्शनी नाभिः सुरपतिविभवस्पर्शि उर्व्याः नाभित्वं (नायकत्वं) वः देयात् ।।५१।।

अर्थ– जो द्वादश सूर्यों के सम्मिलित तेज की विचित्र प्रवृत्ति को प्रकाशित करती है अर्थात् जिसके समक्ष बारहों सूर्यों का सम्मिलित प्रकाश भी मलिन हो जाता है। तथा दैत्यों के अभिमान को विनष्ट करने के लिए प्रधान साधन बन कर जो भगवान् को प्रसन्न किया करती है। एवम् जो देवलक्ष्मी के दिव्य मुख पर पद्मराग माणिक्य के द्रवरस से किये गये तिलक के समान सुशोभित होती है। श्रीसुदर्शन भगवान् की नाभि आपके लिए इन्द्र के विभव को भी हतप्रभ करने वाला भू–मण्डल का साम्राज्य समर्पण करे ।।५१।।

शस्त्रश्यामे शताङ्गक्षितिभृति तरलैरुत्तरंगे तुरंगै–
स्त्वङ्गन्मातङ्गनक्रे कुपितभटमुखच्छायमुग्धप्रवाले ।
अस्तोकं प्रस्नुवाना प्रतिभटजलधौ पाटवं वाडवस्य
श्रेयो वः संविधत्तां श्रितदुरितहरा श्रीधरास्त्रस्य नाभिः ।।५२।।

अन्वय– शस्त्रश्यामे शताङ्गक्षितिभृति तरलैः तुरङ्गैः उत्तरङ्गे त्वङ्गन्मातङ्गनक्रे, कुपितभटमुखच्छायमुग्धप्रवाले, प्रतिभटजलधौ, वाडवस्य अस्तोकं पाटवं प्रस्नुवाना (दुहाना) श्रितदुरितहरा, श्रीधरास्त्रस्य नाभिः वः श्रेयः संविधत्ताम् ।।५२।।

अर्थ– शस्त्र सञ्चार की छटा से श्यामवर्ण के प्रतीत होने वाले शताङ्ग अर्थात् रथ समूह जिसमें पर्वत के सदृश है और चञ्चल अश्व समूह लहर जैसे, तथा मत्त गजेन्द्रों की घटायें ग्राहों के सदृश दिखाती है। क्रोधाविष्ट शूर वीरों के मुख की लालिमा जहाँ पर प्रवाल की तरह चमकती रहती है। इस प्रकार शत्रुओं के महा सैन्य रूप समुद्र में बड़वानल के उत्कट शौर्य को प्रकट करने वाली तथा अपने आश्रित वर्ग के पापों को शमन करने वाली श्रीसुदर्शन भगवान् की पवित्र नाभि आपको कल्याण प्रदान करे।।५२।।

ज्वालाचूडालकालानलचलनसमाडम्बरा सांपरायं
यासावासाद्य माद्यत्सुरसुभटभुजास्फोटकोलाहलाढ्यम् ।
दैत्यारण्यं दहन्ती विरचयति यशोभूतिशुभ्रां धरित्रीं
सा वश्चक्रस्य नक्रस्यदमृदितगजत्रायिणी नाभिरव्यात् ।।५३ ।।

अन्वय– या, असौ नाभिः माद्यत्सुरभटभुजास्फोटकोलाहलाढ्यं युद्धमासाद्य ज्वाला चूडालकालानलचलनसमाडम्बरा दैत्यारण्यन्दहन्तीं धरित्री यशोभूतिशुभ्रां विरचयति नक्रस्यदमृदितगजत्रायिणी सा चक्रस्य नाभिः वः अव्यात्।।५३।।

अर्थ– जो मदोन्मत्त देव योद्धाओं की, भुजाओं की ताल ध्वनि से व्याप्त, युद्ध स्थल में जा कर, प्रलयानल के समान धधकने वाली, अपनी जाज्वल्यमान ज्वाला शिखाओं के द्वारा दैत्य वृन्दरूप जङ्गल को जलाती हुई और अपने यश की विभूति द्वारा, भूमण्डल को शुभ्रवर्ण से अभिषिक्त कर देती है। वह ग्राह से ग्रस्त गजेन्द्र का परित्राण करने वाली श्रीचक्रराज की नाभि आप सब का संरक्षण करे।।५३।।

विन्दन्ती सान्ध्यमर्चिर्विदलितवपुषः प्रत्यनीकस्य रक्तैः
स्फायन्नक्षत्रराशिर्दिशि दिशि कणशः कीकसैः कीर्यमाणैः ।
नाकौकः पक्ष्मलाक्षीनवमदहसितच्छायया चन्द्रपादान्
राथाङ्गी विस्तृणाना रचयतु कुशलं पिण्डिकायामिनी वः ।।५४।।

अन्वय– विदलितवपुषः प्रत्यनीकस्य रक्तैः सान्ध्यम् अर्चिः विन्दन्ती, दिशि दिशि कणशः कीर्यमाणैः कीकसैः (अस्थिभिः) स्फायन् (प्रकाशमानः) नक्षत्रराशिः। नाकौकः पक्ष्मलाक्षी नवमदहसितच्छायया चन्द्रपादान् विस्तृणानां राथाङ्गी पिण्डिकायामिनी वः कुशलं रचयतु।।५४।।

अर्थ– जो अनेक प्रकार के प्रहारों से क्षत–विक्षत शरीर वाले शत्रु सैनिकों

से निकलती हुई रुधिर धारा के द्वारा जो सायंकालीन रक्तिम कान्ति प्रकट किया करती है। तथा प्रत्येक दिशाओं में बिखरे हुए अस्थि समूह जिसमें तारागण के समान चमकते रहते हैं। देवाङ्गनाओं के अभिनव मदपूर्ण हास्य कान्ति की धवलिमा से जो चन्द्रकिरणों की शोभा विखेरती रहती है एवंभूत रात्रि के स्वरूप को धारण करने वाली वह श्रीसुदर्शन चक्र की नाभि आपको सकुशल रखे ।।५४।।

निःसीमं निस्सृताया भुजधरणिधराघाटतः कैटभारे–
राशाकूलङ्कषर्द्धैरहितबलमहाम्भोधिमासादयन्त्याः ।
चक्रज्वालापगायाश्चलदरलहरी मालिकादन्तुराया
बिभ्रत्यावर्तभावं भ्रमयतु भुवने पिण्डिका वः प्रशस्तिम् ।।५५।।

अन्वय– कैटभारेः भुजधरणिधराघाटतः निस्सीमं निस्सृतायाः आशाकूलं कषर्द्धैः, चलदरलहरीमालिकादन्तुरायाः, अहितबलमहाम्भोधिमासादयन्त्याः चक्रज्वालापगायाः, आवर्तभावं बिभ्रती पिण्डिका वः प्रशस्तिं भुवने भ्रमयतु ।।५५।।

अर्थ– कैटभ दैत्य को मारने वाले भगवान् के पर्वताकार भुज प्रदेश से जो अगाध रूप में प्रवाहित होती है और जिसमें दिशारूपी तटों को तोड़ डालने की पूर्णशक्ति है। जिसमें चञ्चल अर पंक्तिरूप लहरों का पूर आया करता है तथा जो शत्रु सैन्य रूप महासमुद्र में जा कर प्रवेश करती है। इस प्रकार चक्रराज की ज्वाला रूप नदी में भँवर की तरह सुशोभित होने वाली वह श्रीसुदर्शन भगवान् की नाभि आपके यश को विश्व में विकसित करे ।।५५।।

पाणौ कृत्वाहवाग्रे प्रतिभटविजयोपार्जितां वीरलक्ष्मी–
मानीतायास्ततोऽस्याः स्वसविधमसुरद्वेषिणा पूरुषेण ।
प्रासादं वासहेतोर्विरचितमरुणै रश्मिभिः सूचयन्ती
नाभिर्वोनिर्मिमीतां रथचरणपतेर्निर्वृतिं निर्विघाताम् ।।५६ ।।

अन्वय– प्रतिभटविजयोपार्जितां वीरलक्ष्मीं, आहवाग्रे पाणौ कृत्वा स्वसविधम् (स्वसमीपम्) आनीतायाः अस्याः (वीरश्रियः) वासहेतोः असुरद्वेषिणां पूरुषेण (सुदर्शनेन) अरुणैः रश्मिभिः विरचितं प्रासादं सूचयन्ती रथचरणपतेः, नाभिः वः निर्विघातां निवृत्तिं (आनन्दं) निर्मिमीताम् ।।५६।।

अर्थ– विपक्षी योद्धाओं पर विजय प्राप्त कर सम्पादित की हुई वीर लक्ष्मी को युद्ध वेदी पर अपने हस्तगत करके, उसके निवासस्थान के लिए श्रीसुदर्शन

पुरुष की अरुण किरणों द्वारा बने हुए भव्य भवन के समान प्रतीत होने वाली श्रीचक्रराज की नाभि आप सबके लिए निर्विघ्न आनन्द सम्पादन करे ।।५६।।

डिण्डीरापाण्डुगण्डैररियुवतिमुखैः पिण्डिका कृष्णहेते–
रुच्चण्डाश्रुप्रवर्षैरुपरततिलकैरुक्तशौण्डीर्यचर्या ।
द्वित्रग्रामाधिपत्यद्रुहिणमदमषीदूषिताक्षक्षमाभृत्
सेवाहेवाकपाकं शमयतु भवतां कर्म शर्मप्रतीपम् ।।५७।।

अन्वय– डिण्डीरापाण्डुगण्डैः उच्चण्डाश्रुप्रवर्षैः, उपरततिलकैः, अरि–युवतिमुखैः उक्तशौण्डीर्यचर्या, कृष्णहेतेः पिण्डिका, द्वित्रग्रामाधिपत्यद्रुहिणमद–मषीदूषिताक्षक्षमाभृत्, सेवाहेवाकपाकं शर्मप्रतीपं, कर्म, भवतां शमयतु ।।५७।।

अर्थ– जिनके कपोल शुष्क होकर फेन पिण्ड के सदृश श्वेत हो गये है तथा निरन्तर अश्रु प्रवाह होने से मुख के अलङ्कार रूप तिलक भी धो उठे हैं। इस प्रकार की शत्रु वर्ग की स्त्रियों द्वारा प्रशंसित महिमा वाली श्रीकृष्णचन्द्र की वह चक्र नाभि, अति स्वल्प दो–तीन ग्राम के ही अधिपति होने पर भी अपने को ब्रह्माण्ड नायक मान बैठे और जिनकी इन्द्रियों में कलुषित भाव भर उठे हैं। उन उन्मत्त नरेशों के शुश्रुषा रूप दुःखदायी कर्मों को प्रशान्त कर दे ।।५७।।

पर्याप्तामुन्नतिं या प्रथयति कमलं या तिरोभाव्य भाति
स्रष्टुः सृष्टेर्दवीयः कुवलयमहितं या बिभर्ति स्वरूपम् ।
भूम्ना स्वेनान्तरिक्षं कवलयति च सा विचित्रा विधत्ताम्
दैतेयारातिनाभिर्द्रविणपतिपदद्रोहिणीं सम्पदं वः ।।५८।।

अन्वय– या पर्याप्तामुन्नतिं प्रथयति, या कमलं तिरोभाव्य भाति। यास्रष्टुः सृष्टेर्दवीयः कुवलयमहितं स्वरूपं बिभर्ति। या स्वेन भूम्ना अन्तरिक्षं कवलयति। सा विचित्रा दैतेयारातिनाभिः वः द्रविणपतिपदद्रोहिणीं सम्पदं विधत्ताम् ।।५८।।

अर्थ– जो पर्याप्त उन्नति प्रकट करती है और अपने उत्कट सौन्दर्य से कमल की शोभा को भी तिरस्कृत करके सुशोभित होती है, जो ब्रह्मदेव के ब्रह्मलोक से अति दूरस्थ भू–मण्डल द्वारा प्रशंसित दिव्य आकार धारण करती है तथा अपनी व्यापकता से आकाश–मण्डल को भी मान लेती है। इस प्रकार अति विलक्षण स्वरूप सम्पन्न वह श्रीचक्रेश की नाभि, कुवेर के वैभव को भी तिरस्कृत करने वाला, विशिष्ट वैभव आपके लिए सम्पन्न करे ।।५८।।

वाणीवाङ्गैश्चतुर्भिः सदसि सुमनसां द्योतमानस्वरूपा
बाह्वन्तस्था मुरारेरभिमतमखिलं श्रीरिव स्पर्शयन्ती ।
दुर्गेवोग्राकृतिर्या त्रिभुवनजननस्थेमसंहारधुर्या
मर्यादालङ्घनं वः क्षपयतु महती हेतिवर्यस्य नाभिः ।।५९।।

अन्वय– या चतुर्भिः अङ्गैः वाणी इव सुमनसां सदसि द्योतमानस्वरूपा। या मुरारेः, वाह्वन्तस्था श्रीः इव अखिलम्, अभिमतं स्पर्शयन्ती या दुर्गा इव उग्राकृतिः या त्रिभुवनजननस्थेमसंहारधुर्या। सा हेतिवर्यस्य नाभिः वः मर्यादालङ्घनं क्षपयतु ।।५९।।

अर्थ– जो अपने नेमि–अर–नाभि और अक्ष इन चारों अङ्गों के साथ एवम् परा–पश्यन्ती–मध्यमा तथा वैखरी से सम्पन्न श्रीसरस्वती देवी की तरह देव स्वरूप विद्वन्मण्डल में प्रकाश करती है तथा भगवान् के वक्ष–स्थल में विराजमान श्रीमहालक्ष्मी के सदृश अपने आश्रितों के लिए अभीष्ट फल वितरण करती है। एवम् दुर्गादेवी की भाँति जो उग्र स्वरूप वाली है और जिसमें तीनों लोक की उत्पत्ति-स्थिति तथा लय की पूर्ण क्षमता है। वह श्रीचक्रराज की नाभि आपके वैदिक धर्म की मर्यादा के अतिक्रामक पापों को नष्ट कर दे ।।५९।।

स्रग्भिः सन्तानजाभिर्मधुरमधुरसस्यन्दसन्दोहिनीभिः
पाटीरैः प्रौढचन्द्रातपचयसुषमालोपनैर्लेपनैश्च ।
धूपैः कालागरूणामपि सुरसुदृशो विस्रमर्चासु यस्या
गन्धं रुन्धन्ति सा वश्चिरमसुरभिदो नाभिरव्यादभव्यात् ।।६०।।

अन्वय– सुरसुदृशो यस्या विस्रं (अशुभगन्धं) अर्चासु सन्तानजाभिः, मधुरमधुरसस्यन्दसन्दोहनीभिः स्रग्भिः प्रौढचन्द्रातपचयसुषमा लोपनैर्लैपनैः पाटीरैः कालागरूणां धूपैश्च रुन्धन्ति सा असुरभिदो नाभिः वः चिरम् अभव्यात् अव्यात् ।।६०।।

अर्थ– देवाङ्गनायें जिस नाभि के असुर संहार जन्य मांस शोणित के दुर्गन्ध को, पूजार्थ लाये हुए पारिजात पुष्पों से बनी हुई तथा मधुर पराग झरने वाली सुन्दर मालाओं द्वारा तथा पूर्णचन्द्र की चन्द्रिका जाल को लजाने वाले सुरभि चन्दन के लेप से, एवम् कृष्ण अगरु आदि सुगन्धित धूपों से हटाती हैं। वह दैत्य विनाशक भगवान् सुदर्शन की नाभि, आपकी, जन्म–मरण रूप चिरन्तन अमङ्गल से रक्षा करे ।।६०।।

अंहः संहत्य दग्ध्वा प्रतिजनिजनितं प्रौढसंसाररवन्या-
दूराध्वन्यानधन्यान्महति विनतिभिर्धामनि स्थापयन्ती।
विश्रान्तिं शाश्वतीं या नयति रमयतां चक्रराजस्य नाभिः
संयन्मोमुह्यमानत्रिदशरिपुदशासाक्षिणी साऽक्षिणी वः ।।६१।।

अन्वय- या पिण्डिका, विनतिभिः, प्रतिजनिजनितं, अंहः, संहत्य दग्ध्वा, प्रौढसंसारवन्या दूराध्वन्यान् अधन्यान् महति धामनि स्थापयन्ती। या शाश्वतीं विश्रान्तिं नयति, संयन्मोमुह्यमाना त्रिदशरिपुदशासाक्षिणी वः अक्षिणी रमयताम् ।।६१।।

अर्थ- जो शरणागतों की जन्म-जन्मार्जित पापराशि को भस्म करके और दुस्तर संसार रूप वन में चिरकाल से भटकते हुए भक्त पथिकों को आनन्दरूप श्रीवैकुण्ठधाम में पहुँचा कर उन्हें शाश्वत् शान्ति प्रदान करती है। तथा संग्राम में व्यामुग्ध दैत्यों की दुर्दशा को देखने से सुप्रसन्न होने वाली वह श्रीचक्रराज की नाभि आपके नेत्रों को आनन्द प्रदान करे ।।६१।।

।। इति नाभिवर्णनम् ।।

*****

अथाक्षवर्णनम्

श्रुत्वा यन्नाम शब्दं श्रुतिपथकटुकं देवनक्रीडनेषु
स्ववैरिस्वैरवत्यो भयविवशधियः कातरन्यस्तशाराः।
मन्दाक्षं यान्त्यमन्दं प्रतियुवतिमुखैर्दर्शितोत्प्रासदर्पै-
रक्षं सौदर्शनं तत्क्षपयतु भवतामेधमानां धनायाम् ।।६२।।

अन्वय- स्ववैरिस्वैरवत्यः, देवनक्रीडनेषु श्रुतिपथकटुकं यन्नामशब्दं श्रुत्वा भयविवशधियः कातरन्यस्तशाराः दर्शितोत्प्रासदर्पैः प्रतियुवतिमुखैः, अमन्दं मन्दाक्षं (व्रीडां) यान्ति। तत् सौदर्शनम्। अक्षं भवताम्, एधमानां धनायां (वाञ्छाम्) क्षपयतु ।।६२।।

अर्थ- दैत्य-दानवों की स्वेच्छाचारिणी स्त्रियाँ पाशा खेलने में कर्ण-कर्कश जिस अक्ष शब्द को सुन कर भयाक्रान्त बुद्धि से पाशे फेंक देती हैं और तब उन्हें देख कर मुसकुराती हुई देवाङ्गनाओं द्वारा वे बहुत लज्जित हो उठती हैं।

इस प्रकार वह श्रीसुदर्शन भगवान् का अक्ष, शब्द आदि विषयों में बढ़ी हुई आपकी अनुचित आकांशा को प्रशान्त करे ।।६२।।

व्यस्तस्कन्धं विशीर्णप्रसवपरिकरं प्रत्तपत्रोपमर्दं
संयद्वर्षासु तर्षातुरखगपरिषत्पीतरक्तोदकासु ।
अक्षं रक्षस्तरूणामशनिवदशनैरापतन्मूर्ध्नि मूर्ध्नि
स्तादस्त्राधीशितुर्वः स्तबकितयशसे द्वेषिणां प्लोषणाय ।।६३।।

अन्वय– तर्षातुरखगपरिषत्पीतरक्तोदकासु, संयत्वर्षासु, रक्षस्तरूणां मूर्ध्नि मूर्ध्नि अशनिवत्, व्यस्तस्कन्धं विशीर्णप्रसवपरिकरं प्रत्तपत्रोपमर्दम्, अशनैः आपतत् अस्त्राधीशितुः, अक्षं वः स्तबकितयशसे द्वेषिणाम् प्लोषणाय च स्तात् ।।६३।।

अर्थ– अत्यन्त प्यास से आतुर पक्षि वृन्द जिस संग्राम की वर्षा में रक्त का ही जल पीते हैं। वहाँ पर राक्षस रूप वृक्षों के ऊपर मस्तकों पर बड़े तीव्र वेग से वज्र के सदृश पड़ कर जो शाखा–प्रशाखा आदि अवयवों तथा पुष्प–फल रूप गर्भ एवम् परिवार और पत्र रूप वाहनों को विनष्ट कर देता है। वह अतिशीघ्रगामी श्रीसुदर्शन देव का अक्ष, आपको विकसित कीर्ति देने तथा शत्रु विनाश के लिए सचेष्ट हो ।।६३।।

दीक्षां संग्रामसत्रे महति कृतवतो दीप्तिभिः संहताभिः
जिह्वाले सप्तजिह्वे दनुजकुलहविर्जुह्वतो नेमिजुह्वा ।
वैकुण्ठास्त्रस्य कुण्डं महदिव विलसत्पिण्डिकावेदिमध्ये
दिश्याद्दिव्यर्द्धिदेश्यं पदमिह भवतामक्षतोन्मेषमक्षम् ।।६४।।

अन्वय– महति संग्रामसत्रे दीक्षांकृतवतः संहताभिः दीप्तिभिः जिह्वाले सप्तजिह्वे, दनुजकुलहविः नेमिजुह्वा जुह्वतः, वैकुण्ठास्त्रस्य पिण्डिकावेदिमध्ये महत्कुण्डमिव विलसत्, अक्षतौन्मेषभक्षं भवताम्, इह, दिव्यर्द्धिदेश्यं पदं दिश्यात् ।।६४।।

अर्थ– महा संग्राम यज्ञ में दीक्षा ले कर, सप्त जिह्वा वाले अपने ज्वाला समूह रूप अग्नि में, जो दानव वंश की हवि को नेमि रूप स्रुक् द्वारा आहुति किया करता है। तथा श्रीसुदर्शन राज की नाभि रूप वेदिका में उत्तम यज्ञ कुण्ड की शोभा प्राप्त करता है। इस प्रकार सर्वदा प्रकाशशील वह श्रीसुदर्शन भगवान् का अक्ष आपके लिए इस लोक में भी स्वर्ग के तुल्य सुखप्रद उत्तम पद प्रदान करे ।।६४।।

तुङ्गाद्दोरद्रिशृङ्गाद्दनुजविजयिनः स्पष्टदानोद्यमानां
शत्रुस्तम्बेरमाणं शिरसि निपततः स्रस्तमुक्तास्थिपुञ्जे ।
रक्तैरभ्यक्तमूर्तेर्विदलनगलितैर्व्यक्तवीरायितर्द्धे–
हर्यक्षस्यारिभङ्गं जनयतु जगतामीडितं क्रीडितं वः ।।६५।।

अन्वय– दनुजकुलविजयिनः, तुङ्गाद्दोरद्रिशृङ्गात्, स्पष्टदानोद्यमानां, शत्रुस्तम्बेरमाणं, स्रस्तमुक्तास्थिपुञ्जे, शिरसि निपततः विदलनगलितैः रक्तैः अभ्यक्तमूर्तेः व्यक्तवीरायितर्द्धेः, हर्यक्षस्य जगतामीडितं, क्रीडितं, वः अरिभङ्गं जनयतु ।।६५।।

अर्थ– दानव वंश विजयी भगवान् के उन्मत्त भुजदण्ड रूप पर्वत के शिखर से निकल कर, मद चूते रहने वाले जिनके मस्तक से अस्थि रूप मुक्ता मालायें खिसक पड़ती है, उन शत्रु रूप मत्त गजेन्द्रों के शिर पर गिर कर जो उन्हें फाड़ देता है और तब उनकी रक्तधाराओं से रङ्गी हुई अपनी मूर्ति द्वारा वीर शोभा को व्यक्त करता हुआ, समस्त विश्व से वन्द्य श्रीअक्षराज की वीर क्रीड़ा, आपके शत्रु दल का विनाश करे ।।६५।।

उन्मीलत्पद्मरागं कटकमिव धृतं बाहुना यन्मुरारे–
र्दीप्तान्रश्मीन्दधानं नयनमिव यदुत्तारकं विष्टपस्य ।
चक्रेशार्कस्य यद्वा परिधिरभिदधद्दैत्यहत्यामिव द्रा–
गक्षं पक्षे पतित्वा परिघटयतु वस्तद्द्रढिष्ठां प्रतिष्ठाम् ।।६६।।

अन्वय– दीप्तान् रश्मीन् दधानं मुरारेर्बाहुना उन्मीलत्पद्मरागं कटकमिव धृतं । यदुत्तारकं विष्टपस्य नयनमिव धृतम् । यद्दैत्यहत्यामभिदधत् । चक्रेशार्कस्य परिधिरिव स्थितम् तदक्षं पक्षे पतित्वा वः द्रढिष्ठां प्रतिष्ठां परिघटयतु ।।६६।।

अर्थ– जो प्रदीप्तकिरणों को धारण करता हुआ भगवान् के हाथों द्वारा प्रकाशमान पद्मराग मणि से खचित कङ्कण के समान धारण किया जाता है । तथा संसार के उद्धारक प्रधान उपाय रूप से स्वीकृत है । जो दैत्य–दानवों की हिंसा को सुस्पष्ट रूप से प्रतिपादन करता हुआ चक्र रूप सूर्य की परिधि की तरह विराजता रहता है । श्रीचक्रेश का वह अक्ष आपका पक्षपाती बन सुस्थायी प्रतिष्ठा अतिशीघ्र सम्पन्न करे ।।६६।।

क्रीडत्प्राक्क्रोडदंष्ट्राहतिदलितहिरण्याक्षवक्षः कवाट-
प्रादुर्भूतप्रभूतक्षतजसमुदितारुण्यमुद्रं समुद्रम् ।
उन्मीलत्किंशुकाभैरुपहसदमितैरंशुभिः संशयघ्नी-
मक्षं चक्रस्य दत्तामघशतशमनं दाशुषीं शेमुषीं वः ।।६७।।

अन्वय- क्रीडत्प्राक्कोडदंष्ट्राहतिदलितहिरण्याक्षवक्षः कवाटप्रादुर्भूत-प्रभूतक्षतजमुदितारुण्यमुद्रं समुद्रम्, उन्मीलत्किंशुकाभैः, अनितैः, अंशुभिः, उपहसत्। अघशतशमनं, चक्रस्य, अक्षं, दाशुषीं, संशयघ्नीं शेमुषीं वो दत्ताम् ।।६७।।

अर्थ- आदिपुरुष श्रीवाराह भगवान् के दन्त प्रहार की क्रीड़ा द्वारा विदीर्ण हिरणाक्ष के वक्षस्थल से निकली हुई रुधिर धारा की लालिमा से रक्तिम वर्ण के हो गये समुद्र को खिले हुए पलास पुष्प के समान अपनी असंख्य किरणों द्वारा जो परिहास किया करता है। वह सैकड़ों पापों को शमन करने वाला, श्रीचक्रराज का अक्ष आपके लिए दान स्वभाव सम्पन्न तथा संशय दूर करने वाली विशुद्ध बुद्धि प्रदान करे ।।६७।।

पद्मोल्लासप्रदं यज्जनयति जगतीमेधमानप्रबोधां
यस्य च्छायासमाना लसति परिसरे रोहिणी तारकाग्र्या ।
नानाहेत्युन्नतत्वं प्रकटयति च यत्प्राप्तकृष्णप्रयाणं
त्रेधा भिन्नस्य धाम्नः समुदय इव तत्पातु वश्चाक्रमक्षम् ।।६८।।

अन्वय- सौमेयदक्षं पद्मोल्लासप्रदं जगतीमेधमानप्रबोधां जनयति। यस्य परिसरे तारकाग्र्या रोहिणी छायासमाना लसति। प्राप्तकृष्णप्रयाणं यत् नानाहेत्युन्नतत्वं प्रकटयति। एवं त्रेधा भिन्नस्य धाम्नः समुदय इव स्थितं तत् चाक्रमक्षं वः पातु ।।६८।।

अर्थ- जो श्रीलक्ष्मीजी तथा भक्त वर्ग के मानस कमल को प्रफुल्लित एवम् जगत् की चेतना को समृद्ध बनाता है। जिसके समीप में चन्द्रमा की पत्नी ताराओं में श्रेष्ठ श्रीरोहिणी छाया के समान हो जाती है। जो श्रीकृष्ण के गमन की सूचना देता है, या जिससे हतप्रभ होकर अग्निदेव भी कृष्णवर्त्मा नाम चरितार्थ करते हैं। जो शार्ङ्ग प्रभृति अनेक आयुधों की अपेक्षा अधिक महत्वशाली है। इस प्रकार सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि में विभक्त तेज का राशिभूत तेजपुञ्ज वह चक्रराज का अक्ष आप सबका रक्षण करे ।।६८।।

शोचिर्भिः पद्मरागद्रवसमसुषमैः शोभमानावकाशं
प्रत्यग्राशोकरागप्रतिभटवपुषा भूषितं पूरुषेण ।
अन्तःस्वच्छन्दमग्नोत्थितभृगुतनयं क्षत्रियाणां क्षताना-
मारब्धं शोणितौघैः सर इव भवतो दिव्यहेत्यक्षमव्यात् ।।६९।।

अन्वय- पद्मरागाद्रवसमसुषमैः शोचिर्भिः, शोभमानावकाशं प्रत्यग्राशोक-रागप्रतिभटवपुषा पूरुषेण भूषितं, क्षतानां क्षत्रियाणां शोणितौघैः आरब्धम्, अन्तःस्वच्छन्दमग्नोत्थितभृगुतनयं सर इव स्थितं दिव्यहेत्यक्षं भवतः अव्यात् ।।६९।।

अर्थ- द्रवीभूत पद्मराग मणि के रस के समान शोभायमान किरणों द्वारा रक्त वर्ण की शोभा से सम्पन्न मध्य प्रदेश वाला तथा प्रफुल्ल अशोक पुष्प के रङ्ग को हतप्रभ कर देने वाले रक्त विग्रहधारी श्रीसुदर्शन पुरुष से जो विभूषित रहता है। तथा युद्ध में काटे गये क्षत्रियों के रक्त प्रवाह से परिपूर्ण, वह सरोवर जिसमें स्नान के अनन्तर श्रीपरशुरामजी उठ रहे हों, उसके सदृश प्रतीत होने वाला वह श्रीसुदर्शनजी का अक्ष आप सबकी रक्षा करे ।।६९।।

मत्तानामिन्द्रियाणां कृतविषयमहाकाननक्रीडनानां
सृष्टं चक्रेश्वरेण ग्रहणधिषणया वारिवद्वारणानाम् ।
गम्भीरं यन्त्रगर्तं कमपि कृतधियो मन्वते यत्प्रदेया-
दस्थूलां संविदं वस्त्रिजगदभिमतस्थूललक्षं तदक्षम् ।।७०।।

अन्वय- कृतधियो यदक्षं कृतविषयमहाकाननक्रीडनानां मत्तानां वारणानाम्, इव इन्द्रियाणां ग्रहणधिषणया चक्रेश्वरेण वारिवत् सृष्टम् गम्भीरं कमपि यन्त्रगर्तं मन्वते त्रिजगदभिमतःस्थूललक्षं तदक्षं वः अस्थूलां संविदं प्रदेयात् ।।७०।।

अर्थ- विवेक सम्पन्न ज्ञानी लोग, जिसे विषय-वासना के जङ्गल में विहार करने वाले मत्त गजेन्द्र के सदृश इन्द्रिय वर्ग के नियमन करने के लिये, श्रीचक्रराज द्वारा निर्मित गजबन्धक गर्त के रूप में एक गम्भीर यन्त्रगर्त समझते हैं। तथा तीनों लोक की अभीष्ट वस्तु प्रदान करने में जो समर्थ हैं। वह श्रीसुदर्शन भगवान् का अक्ष आपके लिये विवेक वाली सूक्ष्म प्रतिभा प्रदान करे ।।७०।।

प्राणादीन्संनियम्य प्रणिहितमनसां योगिनामन्तरङ्गे
तुङ्गं सङ्कोच्य रूपं विरचितदहराकाशकृच्छ्रासिकेन ।
प्राप्तं यत्पूरुषेण स्वमहिमसदृशं धाम कामप्रदं वो
भूयात्तद्भूर्भुवः स्वस्त्रयवरिवसितं पुष्कराक्षायुधाक्षम् ।।७१।।

अन्वय– प्राणादीन्संनियम्य प्रणिहितमनसां योगिनामन्तरङ्गे तुङ्गं रूपं सङ्कोच्य विरचितदहराकाशकृच्छ्रासिकेन पूरुषेण स्वमहिमसदृश्यं धाम यत्प्राप्तम्। भूर्भुवः स्वस्त्रयवरिवसितं पुष्कराक्षायुधाक्षं वः कामप्रदं भूयात् ।।७१।।

अर्थ– योग आदि की पद्धति से, प्राण आदि वायु का नियन्त्रण कर समाहित मन वाले योगियों के अन्तःकरण में विराजने के लिये जिन्हें अपना विराट् स्वरूप संकुचित कर लेना पड़ता है। अतः वे ही सुदर्शन भगवान् अपने स्वरूपानुकूल जिस अक्ष को अपना अधिष्ठान बनाये हैं और जो भूः भुवः तथा स्वः इन तीनों लोकों से अभिवन्दित होता है वह श्रीचक्रराज का अक्ष आपकी कामना सफल करे ।।७१।।

विद्धान्वीध्रेण धाम्ना चरणनखभुवा बद्धवासस्य मध्ये
चक्राध्यक्षस्य बिभ्रत्परिहसितजपापुष्पकोशान्प्रकाशान् ।
शुभ्रैरभ्रैरदभ्रैः शरदि तत इतो व्योम विभ्राजमानं
प्रातस्त्यादित्यरोचिस्ततमिव भवतः पातु राथाङ्गमक्षम् ।।७२।।

अन्वय– मध्ये बद्धवासस्य चक्राध्यक्षस्य चरणनखभुवा वीध्रेण धाम्ना विद्धान्, परिहसितजपापुष्पकोशान् प्रकाशान् बिभ्रत्। शुभ्रैः, अदभ्रैः, अभ्रैः शरदि इतस्ततो विद्धम्। प्रातस्त्यादित्यरोचिस्ततम् बिभ्राजमानं व्योम इव स्थितं राथाङ्गं अक्षं भवतः पातु ।।७२।।

अर्थ– श्रीचक्रराज के मध्य प्रदेश में विराजमान एवम् श्रीसुदर्शन पुरुष के चरण नख से निकलने वाली निर्मल कान्ति द्वारा जो सर्वदा सुशोभित रहता है। तथा जपा पुष्प के सौन्दर्य को तिरस्कृत करके उत्तम प्रकाश धारण करता हुआ, शुभ्र वर्ण की विविध मेघमालाओं से संयुक्त और प्रातःकालीन सूर्य की किरणों से व्याप्त होकर जो चमकते हुए आकाश के सदृश प्रतीत हुआ करता है, वह श्रीसुदर्शन भगवान् का अक्ष आपकी रक्षा करे ।।७२।।

श्रीवाणीवाङ्मृडान्यो विदधति भजनं शक्तयो यस्य दिक्षु
प्राह व्यूहं यदाद्यं प्रथममपि गुणं भारती पाञ्चरात्री ।
घोरां शान्तां च मूर्तिं प्रथयति पुरुषः प्राक्तनः प्रार्थनाभि–
र्भक्तानां यस्य मध्ये दिशतु तदनघामक्षमध्यक्षतां वः ।।७३।।

अन्वय– पाञ्चरात्री भारती यदाद्यं व्यूहं (वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नानिरुद्धरूपम्) प्रथमं गुणं (ज्ञानम्) अपि प्राह। श्रीवाणीवाङ्मृडान्या यस्य शक्तयः दिक्षु भजनं

विदधति। यस्याक्षस्य मध्ये स्थितः, प्राक्तनः पुरुषः भक्तानां प्रार्थनाभिः घोरा शान्तां च मूर्तिं प्रथयति। तदक्षं वा, अनाद्यामध्यक्षतां दिशतु ।।७३।।

अर्थ– पाञ्चरात्र शास्त्र जिसको वासुदेव, सङ्कर्षण प्रद्युम्न और अनिरुद्ध स्वरूप बतलाता है एवम् ज्ञान गुण प्रधान प्रतिपादन करता है। भगवान् के आदि व्यूहरूप वासुदेव आदि की क्रमशः श्री वाणी–वाक् और मृड़ानी ये चार शक्तियाँ चारों दिशाओं में जिस व्यूहात्मक अक्ष की सेवा किया करती हैं। तथा जिसके मध्य में विराजमान होकर श्रीसुदर्शन भगवान् भक्तों की प्रार्थनाओं द्वारा सुप्रसन्न होकर प्रसङ्गानुकूल उनके लिए उग्र और प्रसन्न विग्रह विग्रह धारण कर अभीष्ट पूर्ण किया करते हैं। वह भगवान् का अक्ष आपको दोष रहित आधिपत्य पद प्रदान करे ।।७३।।

रक्षः पक्षेण रक्षत्क्षतममरगणं लक्ष्यवैलक्ष्यमाजौ
लक्ष्मीमक्षीयमाणां बलमथनभुजे वज्रशिक्षानपेक्षे।
निक्षिप्य क्षिप्रमध्यक्षयति जगति यद्दक्षतां दिव्यहेते–
रक्षामामक्षमां तां क्षपयतु भवतामक्षजिल्लक्ष्यमक्षम् ।।७४।।

अन्वय– यदक्षं आजौ रक्षः क्षतं लक्ष्यवैलक्ष्यं अमरगणं रक्षत् वज्रशिक्षानपेक्षे बलमथनभुजे, अक्षीयमाणां लक्ष्मीं क्षिप्रं निक्षिप्य जगति दक्षतामध्यक्षयति। अक्षजिल्लक्ष्यं दिव्यहेतेस्तदक्षं भवताम्, अक्षाणां, ताम्, अक्षमां क्षपयतु ।।७४।।

अर्थ– समराङ्गण में राक्षसों के सैन्य से पराजित हो जाने के कारण सलज्ज देवगण को जो रक्षा किया करता है। तथा वज्र सञ्चालन की कला से अनभिज्ञ देवेन्द्र के भुजदण्डों में अति शीघ्रता से अपरिमित ऐश्वर्य डाल कर लोक में जो अपने अद्भुत सामर्थ्य का प्रकाशन किया करता है एवम् संयम नियमशील पुरुषों के ध्यान का जो एकमात्र लक्ष्य है। वह दिव्य अक्ष आपकी बड़ी से बड़ी अशान्ति को विनष्ट करे ।।७४।।

।। इत्यक्षवर्णनम् ।।

*****

अथ सुदर्शनपुरुषवर्णनम्

ज्योतिश्चूडालमौलिस्त्रिनयनवदनः षोडशोत्तुङ्गबाहुः
प्रत्यालीढेन तिष्ठन्प्रणवशशधराधारषट्कोणवर्ती ।
निस्सीमेन स्वधाम्ना निखिलमपि जगत्क्षेमवन्निर्मिमाणो
भूयात्सौदर्शनो वः प्रतिभटपरुषः पुरुषः पौरुषाय ।।७५।।

अन्वय- ज्योतिश्चूडालमौलिः त्रिनयनवदनः षोडशोत्तुङ्गबाहुः प्रत्यालीढेन (दर्शनीयतया) तिष्टन् प्रणवशशधराधारषट्कोणवर्ती। निस्सीमेन स्वधाम्ना निखिलमपि जगत्क्षेमवन्निर्मिमाणः प्रतिभटपरुषः सौदर्शनः, पूरुषः वः पौरुषाय भूयात् ।।७५।।

अर्थ- जिसका मस्तक ज्वालारूप जटाओं से सुशोभित रहा करता है तथा जिसके तीन नेत्र और सोलह विशाल भुजायें हैं। जो अति दर्शनीय मुद्रा में विराजता हुआ प्रणव और चन्द्रमा को आधार बनाने वाले षट्कोण में निवास करता है। एवम् अपने असीम प्रताप से जगत् का कल्याण करता है। वह सुदर्शन चक्र मध्यवर्ती दिव्य पुरुष आपको पुरुषत्व प्रदान करे ।।७५।।

वाणी पौराणिकी यं प्रथयति महितं प्रेक्षणं कैटभारेः
शक्तिर्यस्येषुदंष्ट्रानखपरशुमुखव्यापिनी तद्विभूत्याम् ।
कर्तुं यत्तत्त्वबोधो न निशितमतिभिर्नारदाद्यैश्च शक्यो
दैवीं वो मानुषीं च क्षिपतु स विपदं दुस्तरामस्त्रराजः ।।७६।।

अन्वय- पौराणिकी वाणी यं पुरुषं कैटभारेः महितं प्रेक्षणं प्रथयति यस्य शक्तिः तद्विभूत्याम्, इषदंष्ट्रानखपरशुमुखव्यापिनी भवति। यत्तत्त्वबोधः निशितमतिभिः नारदाद्यैश्च कर्तुं न शक्यः। स अस्त्रराजः, वः दुस्तरां दैवीं मानुषीं च विपदं क्षिपतु ।।७६।।

अर्थ- वेद एवम् पुराण आदि जिसे भगवान् का प्रशस्त सङ्कल्प स्वरूप प्रतिपादन करते हैं। तथा जिसकी शक्ति भगवान् के राम, वराह, नृसिंह, परशुराम आदि विभव रूपों के इषु-दंष्ट्रा नख और परशु प्रभृति आयुधों में व्याप्त है। एवम् जिसके तात्विक स्वरूप को सूक्ष्म बुद्धि वाले नारद प्रभृति महर्षि गण भी नहीं जान पाते। वह श्रीसुदर्शन पुरुष आपकी दुस्तर देवी तथा मानुषी आपत्तियों को नष्ट करे ।।७६।।

रूढस्तारालवाले रुचिरदलचयः श्यामलैः शस्त्रजालै-
र्ज्वालाभिः सप्रवालः प्रकटितकुसुमो बद्धसङ्घैः स्फुलिङ्गैः ।
प्राप्तानां पादमूलं प्रकृतिमधुरया छायया तापहृद्वो
दत्तामुद्दोः प्रकाण्डः फलमभिलषितं विष्णुसङ्कल्पवृक्षः ।।७७।।

अन्वय– तारालवाले रूढः श्यामलैः शस्त्रजालैः रुचिरदलचयः ज्वालाभिः सप्रवालः बद्धसङ्घैः स्फुलिङ्गैः प्रकटितकुसुमः, उद्दोः प्रकाण्डः । पादमूलं प्राप्तानां प्रकृतिमधुरया छायया तापहृत् विष्णुसङ्कल्पवृक्षः वः अभिलषितं फलं दत्ताम् ।।७७।।

अर्थ– जो प्रणव रूप क्यारी में प्रकट हुआ है तथा कुन्त-कृपाण आदि शस्त्र समूह उसके सुन्दर-सुन्दर पत्ते और रक्तवर्ण की ज्वालायें कोमल-कोमल किसलय (कल्ले) हैं। अग्नि के स्फुलिङ्ग जिसके पुष्प एवम् उच्च भुजदण्ड ही स्कन्ध है। जो अपने चरण के आश्रित प्राणियों के ताप को अपनी स्वाभाविक मधुर छाया द्वारा प्रशान्त करता रहता है। इस प्रकार भगवान् विष्णु का सङ्कल्प स्वरूप वह श्रीसुदर्शन रूप वृक्ष आपके लिए अभीष्ट अमृतमय फल प्रदान करे ।।७७।।

धाम्नामैरम्मदानां निचयमिव चिरस्थायिनां द्वादशानां
मार्तण्डानां समूहं मह इव बहुलां रत्नभासामिवर्द्धिम् ।
अर्चिस्सङ्घातमेकीकृतमिव शिखिनां वाडवाग्रेसराणाम्
शङ्कन्ते यस्य रूपं स भवतु भवतां तेजसे चक्रराजः ।।७८।।

अन्वय– यस्य रूपं चिरस्थायिनाम्, ऐरम्मदानां धाम्नां निचयमिव द्वादशानां मार्तण्डानां महस्समूहमिव, रत्नभासां बहुलाम्, ऋद्धिमिव, वाडवाग्रेसराणाम्, शिखिनाम्, एकीकृतमर्चिस्सङ्घातमिव, (द्रष्टारः शङ्कन्ते) स चक्रराजः भवतां तेजसे भवतु ।।७८।।

अर्थ– जिसके स्वरूप के विषय में दर्शक गण यह विकल्प किया करते हैं कि क्या? यह अधिक काल तक स्थिर रहने वाली विद्युत् का तेज पुञ्ज है? अथवा द्वादश सूर्यों का एकत्रित तेज समूह है? या रत्न प्रभाओं की अति विशिष्ट समृद्धि है। अथवा वड़वानल की भी अपेक्षा अधिक तेजस्वी अग्नि ज्वालाओं का सामूहिक तेज पुञ्ज है? इस तरह के अनेक विकल्पों का विषय वह चक्रराज सुदर्शन सर्वत्र आपके तेज का विस्तार करे ।।७८।।

उग्रंपश्याक्षमुद्यद्भ्रुकुटि समुकुटं कुण्डलिस्पष्टदंष्ट्रं–
चण्डास्त्रैर्बाहुदण्डैर्लसदनलसमक्षौमलक्ष्योरुकाण्डम् ।
प्रत्यालीढस्थपादं प्रथयतु भवतां पालनव्यग्रमग्रे–
चक्रेशोऽकालकालेरितभटविकटाटोपलोपाय रूपम् ।।७९।।

अन्वय– चक्रेशः उग्रंपश्याक्षम्, उद्यद् भ्रुकुटि, समुकुटं कुण्डलि स्पष्टदंष्ट्रं चण्डास्त्रैर्बाहुदण्डैर्लसत् । अनलसमक्षौमलक्ष्योरु काण्डम् प्रत्यालीढं स्थपादं, पालनव्यग्ररूपम्, अकालकालेरितभटविकटाटोपलोपाय भवताम् अग्रे प्रथयतु ।।७९।।

अर्थ– जिनके नेत्र अत्यन्त भयङ्कर तथा भ्रुकुटि अतीव उग्र हैं । मुकुट और कुण्डल धारण किये रहते हैं । बड़े-बड़े दांत हैं और भुजदण्डों में प्रलय मचा देने वाले अस्त्र सर्वदा धारण किये रहते हैं । आसन पर एक विलक्षण ढङ्ग से बैठ कर जगत् की रक्षा के लिए सतर्क रहा करते हैं । ऐसे श्रीचक्रराज सुदर्शन अकाल में प्रेरित यमराज के दूतों के गर्व को विनष्ट करने के लिए अपने उक्त दिव्य स्वरूप को आपके समक्ष प्रकट करे ।।७९।।

चक्रं कुन्तं कृपाणं परशुहुतवहावंकुशं दण्डशक्ति–
शङ्खं कोदण्डपाशौ हलमुसलगदावज्रशूलांश्च हेतीन् ।
दोर्भिः सव्यापसव्यैर्दधदतुलबलस्तम्भितारातिदर्पै–
र्व्यूहस्तेजोभिमानी नरकविजयिनो जृम्भतां सम्पदे वः ।।८०।।

अन्वय– नरकविजयिनस्तेजोभिमानी व्यूहः (अवतारविशेषः) अतुल–बलस्तम्भितारातिदर्पैः सव्यापसव्यदोर्भिः चक्रं कुन्तं कृपाणं परशुहुतवहौ, अंकुशं दण्डशक्ति शङ्खं कोदण्डपाशौ, हलमुसलगदावज्रशूलाँश्चहेतीन् दधत् वः सम्पदे जम्भृताम् ।।८०।।

अर्थ– नरकासुर विजयी भगवान् के तेज के विशिष्ट व्यूह (अवतार) अपने असीम बल से शत्रु वर्ग के दर्प को विनष्ट कर देने वाले अपने दक्षिण और वाम सोलहों हाथों में क्रमशः चक्र–कुन्त–कृपाण–परशु–अग्निबाण–अंकुश–दण्ड–शक्ति–शङ्ख–धनुष–पाश–हल–मुसल–गदा–वज्र और शूल नामक आयुधों को धारण करते हुए भगवान् श्रीसुदर्शन पुरुष आपको सम्पत्ति प्रदान करने के लिए अभिव्यक्त हों ।।८०।।

पीतं केशे रिपोरप्यसृजि रथपदे संश्रितेऽप्युत्कटाक्षं
चन्द्राधःकारि यन्त्रे वपुषि च दलने मण्डले च स्वराङ्कम्।
हस्ते वक्त्रे च हेतिस्तवकितमसमं लोचने मोचने च-
स्तादस्तोकाय धाम्ने सुरवरपरिषत्सेवितं दैवतं वः ।।८१।।

अन्वय- रिपोरप्यसृजि केशे च पीतं रथपदे संश्रितेऽप्युत्कटाक्षं, यन्त्रे वपुषि च चन्द्राधःकारि, दलने मण्डले च स्वराङ्कम् हस्ते वक्रे च हेतिस्तवकितं लोचने मोचने च असमम्, सुरवरपरिषत्सेवितं दैवतं वः स्तोकाय धाम्ने स्तात् ।।८१।।

अर्थ- केश और शत्रु शोणित के विषय में जिनमें पीत गुण हैं, अर्थात् केश पीतवर्ण के और शत्रु शोणित भी पी लेते हैं। रथ चरण और संमिश्र व्यक्ति के विषय में जिनके अक्ष (नेत्र) अति उत्कट और उदार हैं। जिनके यन्त्र और शरीर से चन्द्रमा भी तिरस्कृत रहता है। तथा जिनके शत्रु दलन और मण्डल में स्वर (निर्घोष) एवम् प्रणव का अङ्क है। जिनके हस्त और मुख में आयुधों तथा ज्वालाओं के स्तवक (गुच्छ) हैं और नेत्र तथा शत्रुमोचन असमान हैं। इस प्रकार देवगण से सुसेवित श्रीसुदर्शन पुरुष आपको प्रकृष्ट तेज प्रदान करें ।।८१।।

चित्राकारैः स्वचारैर्मितसकलजगज्जागरूकप्रतापो
मन्त्रं तन्त्रानुरूपं मनसि कलयतो मानयन्नात्मगुह्यान्।
पञ्चाङ्गस्फूर्तिनिर्वर्तितरिपुविजयो धाम षण्णां गुणानाम्
लक्ष्मीं राजासनस्थो वितरतु भवतां पुरुषश्चक्रवर्ती ।।८२।।

अन्वय- चित्राकारैः स्वचारैः, मितसकलजगज्जागरूकप्रतापः, तन्त्रानुरूपं मन्त्रं मनसि कलयतः, आत्मगुह्यान् मानयन् पञ्चाङ्गस्फूर्तिनिर्वर्तितरिपुविजयः, षण्णां गुणानां धाम राजासनस्थः चक्रवर्ती पूरुषः भवतां लक्ष्मीं वितरतु ।।८२।।

अर्थ- जो अपने विशेष विविध स्वरूप के परिभ्रमण द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड को माप लिये हैं। जिनका प्रताप देदीप्यमान है। पाञ्चरात्र तन्त्र के अनुसार सुदर्शन के मन्त्र को अपने हृदय में सङ्कलन करते हुए एवम् अपने रहस्य से अपने भक्त वर्ग को सम्मानित करते हुए, जो अपने पञ्चाङ्ग न्यास सम्पत्ति द्वारा शत्रु दल पर विजय प्राप्त किया करते हैं। जो ज्ञान-शक्ति आदि षट् गुणों के अधिष्ठान हैं। ऐसे चन्द्रमण्डल के सिंहासन पर विराजमान चक्रवर्ती श्रीसुदर्शनराज आपके लिए लक्ष्मी वितरण करें ।।८२।।

अक्षावृत्ताभ्रमालान्यरविवरलुठच्चन्द्रचण्डद्युतीनि
ज्वालाजालावलीढस्फुठदुडुपटलीपाण्डुदिङ्मण्डलानि ।
चक्रान्ताक्रान्तचक्राचलचलितमहीचक्रवालार्तशेषा-
ण्यस्त्रग्रामाग्रिमस्य प्रददतु भवतां प्रार्थितं प्रस्थितानि ।।८३।।

अन्वय- अक्षावृत्तभ्रमालानि, अरविवरलुठच्चन्द्रचण्डद्युतीनि, ज्वाला-जालावलीढस्फुटदुडुपटलीपाण्डुदिङ्मण्डलानि, चक्रान्ताक्रान्तचक्राचल-चलितमही चक्रवालार्तशेषाणि अस्त्रग्रामाग्रिमस्य प्रस्थितानि भवतां प्रार्थितं प्रददतु ।।८३।।

अर्थ- जिसके अक्ष में मेघ मालायें इधर-उधर बार-बार आवर्तन किया करती हैं। तथा अरों के मध्य प्रदेश में चन्द्र और सूर्य लुण्ठन करते रहते हैं। एवम् जिसके ज्वाला समूह से हतप्रभ और छिन्न-भिन्न, नक्षत्र मण्डल की कान्ति से दिशायें धवल वर्ण की प्रतीत हुआ करती हैं। इसी प्रकार जिनके प्रयाण काल में चक्र की नेमि द्वारा लोकालोक पर्वत के आक्रान्त हो जाने से भू-मण्डल कम्पित होने लगता तथा शेष को भी वेदना का अनुभव होने लगता है। एवं भूत अस्त्रसमूहशिरोमणि चक्रराज श्रीसुदर्शन भगवान् के प्रयाण आपको अभिलषित अर्थ प्रदान करें ।।८३।।

शूलं त्यक्तात्मशीलं सृणिरणुकघृणिः पट्टसः स्पष्टसादः
शक्तिः शालीनशक्तिः कुलिशमकुशलं कुण्ठधारः कुठारः ।
दण्डश्चण्डत्वशून्यो भवति तनुधनुर्यत्पुरस्तात्स वः स्ताद्
ग्रस्ताशेषास्त्रगर्वो रथचरणपतिः कर्मणे शार्मणाय ।।८४।।

अन्वय- यत्पुरस्तात् शूलं त्यक्तात्मशीलं भवति, सृणिः अणुकघृणिः पट्टसः स्पष्टसादः शक्तिः शालीनशक्तिः, (अधृष्टशक्तिः) कुलिशम्, अकुशलम्, कुठारः, कुण्ठधारः, दण्डः चण्डत्वशून्यः धनुस्तनुर्भवति ग्रस्ताशेषास्त्रगर्वः सरथचरणपतिः वः शार्मणाय कर्मणे स्तात् ।।८४।।

अर्थ- जिन दिव्य पुरुष के समक्ष शङ्कर का शूल शत्रु विनाश की प्रवीणता रूप अपने स्वभाव को त्याग देता है। एवम् इसी प्रकार अग्निदेव के अंकुश की किरणें विनष्ट और वायु देव का पट्टस नामक आयुध भी छिन्न-भिन्न हो जाता है। श्रीकार्तिकेय की शक्ति का धैर्य समाप्त और इन्द्र के वज्र की भी कुशलता अस्तङ्गत

हो उठती है। गणेश का कुठार कुण्ठधार तथा यमदण्ड भी अपनी क्रूरता से रहित और रुद्र का धनुष भी क्षीण हो जाया करता है। इस तरह सभी अस्त्रों के गर्व को खण्डित करने वाले श्रीचक्रराज सुदर्शन पुरुष आपके कल्याणकारक कार्य में सर्वदा सतर्क रहें ।।८४।।

क्षुण्णाजानेयवृन्दं क्षुभितरथगणं सन्नसान्नाय्ययूथम्
क्ष्वेलासंरम्भहेलाकलकलविगलत्पूर्वगीर्वाणगर्वम्।
कुर्वाणः साम्परायं रथचरणपतिः स्थेयसीं वः प्रशस्तिं
दुग्धां दुग्धाब्धिभासं भयविवशशुनासीरनासीरवर्ती ।।८५।।

अन्वय– भयविवशशुनासीरवर्ती, क्षुण्णाजानेयवृन्दं क्षुभितरथगणं सन्न-सान्नाय्ययूथम्, क्ष्वेलासंरम्भहेलाकलकलविगलत्पूर्वगीर्वाणगर्वम्, साम्परायं कुर्वाणः रथचरणपतिः स्थेयसीं दुग्धाब्धिभासं वः प्रशस्तिं दुग्धाम् ।।८५।।

अर्थ– जो भयाक्रान्त इन्द्र के विजयार्थ सेनापति का पद ग्रहण करते हैं तथा जिस युद्ध में अच्छे-अच्छे घोड़े चूर्ण-विचूर्ण हो जाते और रथ पक्तियां जर्जरित हो जाती एवम् बड़े-बड़े मत्तगजेन्द्र, तहस-नहस हो जाया करते हैं। जहाँ पर विजय निमित्तक हर्ष के कोलाहल की क्रीड़ा में दैत्य वर्ग का गर्व खण्डित एवम् विलीन हो जाता है। ऐसे भयङ्कर युद्ध को करने वाले श्रीचक्रराज सुदर्शन पुरुष आपको क्षीरसमुद्र के सदृश धवल एवम् सुस्थिर कीर्ति से परिपूर्ण करें ।।८५।।

द्रुह्यद्दोःशालिमालिप्रहरणरभसोत्तानिते वैनतेये-
विद्राति द्राक्प्रयुक्तः प्रधनभुवि परावर्तमानेन भर्त्रा।
निर्जित्य प्रत्यनीकं निरवधिकचरद्धास्तिकाश्वीयरथ्यं
पथ्यं विश्वस्य दाश्वान्प्रथयतु भवतो हेतिरिन्द्रानुजस्य ।।८६।।

अन्वय– द्रुह्यद्दोः शालिमालिप्रहरणरभसोत्तानिते वैनतेये, द्राक् विद्राति (पलायमाने प्रधावति सति) प्रधनभुवि परावर्तमानेन भर्त्रा प्रयुक्तः, निरवधिक-चरद्धास्तिकाश्वीयरथ्यं प्रत्यनीकं निर्जित्य विश्वस्य पथ्यं दाश्वान् इन्द्रानुजस्य हेतिः भवतः प्रथयतु ।।८६।।

अर्थ– शत्रु संहार में विलक्षण सामर्थ्य वाले भुजदण्डों से सम्पन्न माली नामक दैत्य के गदा आदि के प्रहार से जर्जरित होने पर जब गरुड़जी अतिशीघ्र रण स्थल से विमुख होने लगे, तो भगवान् फिर उन्हें लौट कर और जिन श्रीसुदर्शन

पुरुष को नियुक्त कर उनके द्वारा असंख्य हाथी, घोड़े तथा रथों से व्याप्त शत्रु सैन्य पर विजय दिलाये एवम् विश्व का कल्याण किये हैं। वे चक्राधीश श्रीसुदर्शनराज आपको प्रख्यात करें ।।८६।।

नन्दिन्यानन्दशून्ये गलति गणपतौ व्याकुले बाहुलेये
चण्डे चाकित्यकुण्ठे प्रमथपरिषदि प्राप्तवत्यां प्रमाथम् ।
उच्छिद्याजौ बलिष्ठं बलिजभुजवनं यो ददावादिभिक्षो-
र्भिक्षां तत्प्राणरूपां स भवदकुशलं कृष्णहेतिः क्षिणोतु ।।८७।।

अन्वय- आजौ नन्दिन्यानन्दशून्ये, गणपतौ गलति, बाहुलेये व्याकुले सति, चण्डे चाकित्यकुण्ठे, प्रमथपरिषदि प्रमाथं प्राप्तवत्यां, बलिष्ठं बलिजभुजवनम्, आदिभिक्षोः (शिवस्य) तत्प्राणरूपां भिक्षां यः प्रददौ सः कृष्णहेतिः भवदकुशलं क्षिणोतु ।।८७।।

अर्थ- जो युद्ध में नन्दीश्वर को निरानन्द कर के गणेश को भगा दिये तथा कार्तिकेय को व्याकुल बना और चण्ड नामक प्रमथ को भी चकित तथा कुण्ठित कर दिये। इस प्रकार शङ्करजी के समस्त प्रमथ गण के अस्त-व्यस्त हो जाने पर बलिपुत्र बाणासुर के भुज समूह रूप वन को भी काट कर जो आदि भिक्षुक श्रीशङ्करजी को बाणासुर की प्राण भिक्षा दे कर प्रसन्न कर दिये। वे श्रीचक्रेश श्रीसुदर्शन पुरुष आपके अमङ्गल को नष्ट करें ।।८७।।

रक्तौघाभ्यक्तमुक्ताफललुलितलसद्वीचिवृद्धौ महाब्धौ
सन्ध्यासम्बद्धताराजलधरशबलाकाशनीकाशकान्तौ ।
गम्भीरारम्भमम्भश्चरमसुरकुलं वेदविघ्नं विनिघ्नन्
निर्विघ्नं वः प्रसूतां व्यपगतविपदं सम्पदं चक्रराजः ।।८८।।

अन्वय- रक्तौघाभ्यक्तमुक्ताफललुलितलसद्वीचिवृद्धौ, सन्ध्यासम्बद्ध-ताराजलधरशबलाकाशनीकाशकान्तौ, महाब्धौ अम्भश्चरम्, गम्भीरारम्भं वेद-विघ्नमसुरकुलं विनिघ्नन्, चक्रराजः, वः व्यपगतविपदं निर्विघ्नं प्रसूताम् ।।८८।।

अर्थ- शत्रुओं के रक्त प्रवाह से रञ्जित मोतियों से विशिष्ट एवम् चञ्चल लहरियों से परिपूर्ण वह महासमुद्र, जिसकी कान्ति, सायंकालीन मेघ तथा तारागण के मिश्रित रक्त श्वेत वर्ण वाले आकाश मण्डल के सदृश प्रतीत हुआ करती है। उस समुद्र के जल में सञ्चरण स्वभाव वाले, वेद के अपहर्ता, भयङ्कर असुर कुल

को, निर्विघ्न निर्मूल करने वाले श्रीचक्रराज सुदर्शन आपके लिए निरापद सम्पत्ति प्रदान करें ।।८८।।

काशीविप्लोषचैद्यक्षपणधरणिजध्वंससूर्यापिधान-
ग्राहद्वेधात्वमालित्रुटनमुखकथावस्तव: कीर्तिगाथा: ।
गीयन्ते किन्नरीभि: कनकगिरिगुहागेहिनीभिर्यदीया
देयाद्दैतेयवैरी स सकलभुवनश्लाघनीयां श्रियं व: ।।८९।।

अन्वय- सौमेकाशीविप्लोषचैद्यक्षपणधरणिजध्वंससूर्यापिधानग्राहद्वे-धात्वमालित्रुटनमुखकथावस्तव: यदीया: कीर्तिगाथा: कनकगिरिगुहागेहिनीभि: किन्नरीभि: गीयन्ते । स दैत्येयवैरी सकलभुवनश्लाघनीयां श्रियं व: देयात् ।।८९।।

अर्थ- काशी पुरी जलाना, शिशुपाल का शिरच्छेदन तथा नरकासुर वध एवम् जयद्रथ वध के समय सूर्य का आच्छादन और ग्राह के शरीर का काटना, मालि राक्षस का भञ्जन आदि जिनकी विशेष कीर्ति कथाओं को सुमेरु पर्वत की कन्दराओं में रहने वाली देवाङ्गनायें गाया करती हैं । वे दानव संहारकर्ता श्रीसुदर्शन पुरुष आपके लिए सकल लोक प्रशस्त सम्पत्ति प्रदान करें ।।८९।।

नानावर्णान्विवृण्वन्विरचितभुवनानुग्रहान्विग्रहान्य-
श्चक्रेष्वष्टासु मृष्टासुरवरतरुणीकण्ठकस्तूरिकेषु ।
आतारादर्णमालावधिषु वसति य: पुरुषो व: स वध्यात्
व्यध्वैरुद्भूतसत्त्वैरुपहितमबहिर्ध्वान्तमध्वान्तवर्ती ।।९०।।

अन्वय- य: पूरुष: मृष्टासुरवरतरुणीकण्ठकस्तूरिकेषु आतारादर्णमाला-वधिषु अष्टासु चक्रेषु नानावर्णान्विरचितभुवनानुग्रहान्विवृण्वन्, अध्वान्तवर्ती स: व: उद्भूतसत्त्वैर्व्यध्वै: उपहितम् अबहिर्ध्वान्तं वध्यात् ।।९०।।

अर्थ- जो श्रीसुदर्शन पुरुष श्रेष्ठ असुरों की स्त्रियों को कण्ठाभरण कस्तूरी चूर्ण से शून्य बना देते हैं । एवम् प्रणव से मातृका अक्षर पंक्ति पर्यन्त अष्टचक्रों में अनेक प्रकार के वर्ण वाले संसार के अनुग्रह के लिए विविध स्वरूप को प्रकट करते हुए भक्तों के लिए निश्चित कल्याण का मार्ग प्रदर्शन करते रहते हैं। वे सुदर्शन भगवान् अवैदिक मार्ग के संसर्ग से आये हुए आपके आन्तर अज्ञान को नष्ट करें ।।९०।।

(अष्ट चक्रों का स्वरूप अहिर्बुध्न संहिता में वर्णित है ।)

द्वात्रिंशत्षोडशाष्टप्रभृतिपृथुभुजस्फूर्तिभिर्मूर्तिभेदैः
कालाद्ये चक्रषट्के प्रकटितविभवः पञ्चकृत्यानुरूपम्।
अर्थानामर्थितानामहरहरखिलं निर्विलम्बैर्विलम्बैः
कुर्वाणो भक्तवर्गं कुशलिनमवतादायुधग्रामणी र्वः।।९१।।

अन्वय– द्वात्रिंशत्षोडशाष्टप्रभृतिपृथुभुजस्फूर्तिभिर्मूर्तिभेदैः, कालाद्ये चक्रषटके पञ्चकृत्यानुरूपं प्रकटितविभवः अर्थितानामर्थानां निर्विलम्बैः, विलम्बैः (प्रदानैः) अखिलभक्तवर्गम् अहरहः कुशलिनं कुर्वाणः, आयुधग्रामणीर्वः अवतात्।।९१।।

अर्थ– जो बत्तीस–सोलह एवम् आठ आदि मांसल भुजा वाले दिव्य स्वरूपों से काल–प्रकृति–पुरुष–महत् और अहङ्कार तथा जगत् आदि षट्चक्रों में लोक के तिरोभाव–सृष्टि–स्थिति–संहार एवम् अनुग्रह इन पाँच रूपों को धारण कर अपने वैभव को प्रकट करते हैं। जो प्रार्थियों को अतिशीघ्र अभीष्ट प्रदान कर सभी भक्तों को निरन्तर सुखी रखते हैं। वे सुदर्शन पुरुष आपकी रक्षा करें।।९१।।

कोणैरर्णैः सरोजैरपि कपिशगुणैः षड्भिरुदिभन्नशोभे
श्रीवाणीपूर्विकाभिर्दधति विकसतः शक्तिभिः केशवादीन्।
तारान्ते भूपुरादौ रथचरणगदाशार्ङ्गखड्गाङ्किताशे
यन्त्रे तन्त्रोदिते वः स्फुरतु कृतपदं लक्ष्म लक्ष्मीसखस्य।।९२।।

अन्वय– षड्भिः कपिशगुणः कौणैः, अर्णैः (अक्षरैः) सरोजैः उद्भिन्नशोभे नूपुरादौ तारान्ते, रथचरणगदाशार्ङ्गखड्गांकिताशे, श्रीवाणीपूर्विकाभिः, शक्तिभि–र्विकसतः केशवादीन् दधाति तन्त्रोदिते यन्त्रे कृतपदं, लक्ष्मीसखस्य लक्ष्मः वः स्फुरतु।।९२।।

अर्थ– जो पिङ्गलवर्ण के षटकोण, षट्अक्षर और षटपद्मों से सुशोभित रहते हैं। जिसके आदि में भूविम्ब तथा अन्त में प्रणव विराजता है, जिसकी पूर्व आदि दिशाओं में चक्र–कौमोद की गदा–शार्ङ्ग–धनुष और नन्दकखड्ग अङ्कित रहते हैं। जो श्री, वाणी, वाक् तथा मृडानी आदि शक्तियों से सुशोभित होते हुए केशव आदि द्वादशव्यूह मूर्तियों को धारण करते एवम् पाञ्चरात्र आगम में कहे गये यन्त्र स्वरूप में विराजमान रहते हैं। श्रीविष्णु भगवान् के प्रधान चिह्नभूत वे श्रीसुदर्शन पुरुष आपको दर्शन देने के लिए प्रकट होवें।।९२।।

दंष्ट्राकान्त्या कडारे कपटकिटितनोः कैटभारेरधस्ता-
दूर्ध्वं हासेन विद्धे नरहरिवपुषो मण्डले वासवीये।
प्राक्प्रत्यक्सान्ध्यसान्द्रच्छविभरभरिते व्योम्नि विद्योतमानो
दैतेयोत्पातशंसी रविरिव रहयत्वस्त्रराजो रुजं वः।।९३।।

अन्वय- पूर्वश्लोकोक्तयन्त्रस्य अधस्तात् कपटकिटितनोः (कपटवराहमूर्तेः) दंष्ट्राकान्त्या कडारे (कपिलवर्णे) ऊर्ध्वं नरहरिवपुषः हासेन विद्धे (धवले) वायवीये मण्डले स्थितः सन् प्राक् प्रत्यक् सान्ध्यसान्द्रच्छविभरभरिते व्योम्नि, दैतेयोत्पातशंसी रविरिव विद्योतमानः, अस्त्रराजो वः रुजं रहयतु।।९३।।

अर्थ- पूर्व कथित यन्त्र का अधोभाग श्रीवराह भगवान् की दन्तकान्ति के संसर्ग से पिङ्गलवर्ण का है और ऊर्ध्वभाग श्रीनृसिंह भगवान् के हास्य प्रकाश से धवल वर्ण का। तथा जो इन्द्र मण्डल में विराजते हुए प्रातः सायंकालीन सघन कान्ति पुञ्ज से व्याप्त आकाश मण्डल में दैत्यों के विनाश की सूचना देने वाले श्रीसूर्यदेव के सदृश प्रकाशमान रहते हैं। वे श्रीचक्रराज सुदर्शन आपके दृष्टादृष्ट प्रतिबन्धक रोगों को विनष्ट करें।।९३।।

कोणे क्वापि स्थितोऽपि त्रिभुवनविततश्चन्द्रधामापि रूक्षो-
रुक्मच्छायोऽपि कृष्णाकृतिरनलमयोऽप्याश्रितत्राणकारी।
धारासारोऽपि दीप्तो दिनकररुचिरप्युल्लसत्तारकश्री-
श्चक्रेशश्चित्रभूमा वितरतु विमतत्रासनं शासनं वः।।९४।।

अन्वय- क्वापि यन्त्रकोणे स्थितोऽपि त्रिभुवनविततः, रुक्मच्छायोऽपि कृष्णाकृतिः अनलमयोऽपि आश्रितत्राणकारी। धारासारोऽपि दीप्तः। दिनकररुचिरपि उल्लसत्तारकश्रीः। चित्रभूमा चक्रेशः वः विमतत्रासनं, शासनं वितरतु।।९४।।

अर्थ- जो यन्त्र के एक कोण में रहते हुए भी त्रिलोक में व्याप्त हैं। स्वर्ण कान्ति होने पर भी कृष्ण विग्रहवान् हैं। अग्निवर्ण होने पर भी भक्त रक्षक हैं। जलधारा रूप हो कर भी अत्यन्त प्रदीप्त रहते हैं। जो सूर्य कान्ति हो कर भी तारक (प्रणव) की छवि धारण करते हैं। इस प्रकार परस्पर विरुद्ध धर्मों के आश्रय श्रीचक्रराज सुदर्शन आपके लिए शत्रु संत्रासक शासकत्व प्रदान करें।।९४।।

शुक्लः शक्रस्तवस्ते सह दहन कलां काल तेऽयं न कालः
किं वो रक्षांसि रक्षा तव फलतु पते यादसां पादसेवा।
वांयो हृद्योऽसि भर्तु स्त्यज धनज मदं सेव्यतां त्र्यम्बकेति
प्राहुर्यद्यन्त्रपालाः स दनुजविजयी हन्तु तन्द्रालुतां वः ।।९५।।

अन्वय– हे शक्र ! ते स्तवः शुक्लः । हे दहन ! कलां सह तिष्ठ । हे काल ! अयं ते कालो न । हे रक्षांसि ! वो रक्षा किम् । हे यादसाम्पते ! तव पादसेवा फलतु । हे वायो ! भर्तुः हृद्योऽसि । हे धनद ! मदं त्यज । हे त्र्यम्बक ! चक्रराजः सेव्यताम् । इति यन्त्रपालाः प्राहुः । स दनुजविजयी वः तन्द्रालुतां हन्तु ।।९५।।

अर्थ– श्रीसुदर्शन पुरुष के चरण सेवक उनके विषय में इस प्रकार की घोषणा करते रहते हैं कि; हे इन्द्र ! तुम्हारी स्तुति अति निर्मल है। हे अग्निदेव ! तुम श्रीचक्रराज के दर्शन के लिए, क्षणमात्र रुक जावो। हे काल ! अभी तुम्हारा समय नहीं हुआ है। ऐ राक्षसवृन्द ! तुम्हारी रक्षा किस काम की। हे वरुणदेव ! तुम्हारी पाद सेवा सफल है। हे वायुदेव ! तुम तो चक्रराज के अत्यन्त प्रिय पात्र हो। हे कुबेर ! तुम अपने धन का दुरभिमान मत करो। हे त्रिलोचन ! तुम चक्रराज की सेवा करो। इस प्रकार के दैत्य कुल विजेता श्रीचक्रराज सुदर्शन आपके जाड्य तथा आलस्य को विनष्ट करें ।।९५।।

गायत्र्यर्णारचक्रे प्रथममनुसखः स्मेरपत्रारविन्दे
बिम्बं वह्नेस्त्रिकोणं वहती जयिजयाद्यष्टशक्तौ निषण्णा।
शोकं वोऽशोकमूले पदसविधलसद्भीमभीमाक्षभीमा–
पुंसो दिव्यास्त्रधामा पुरुषहरिमयी मूर्तिरस्यत्वपूर्वा ।।९६।।

अन्वय– प्रथममनुसखः स्मेरपत्रारविन्दे, वह्नेस्त्रिकोणं बिम्बं वहति। जयिजयाद्यष्टशक्तौ गायत्र्यर्णारचक्रे अशोकमूले निषण्णा, पदसविधसद्भीम–भीमा दिव्यास्त्रधामा पुरुषहरिमयी (नरसिंहमयी) अपूर्वा पुंसो मूर्तिः वः शोकं अस्यतु ।।९६।।

अर्थ– जहाँ पर आदि व्यूह श्रीवासुदेव के द्वादशाक्षर मन्त्र के, सखा रूप, प्रफुल्ल द्वादश पत्रात्मक कमल में, अग्नि के त्रिकोण बिम्ब, कर्णिका के स्थान में विराजमान हैं। तथा जयिनी–जया–मोहिनी–ह्लादिनी–अजिता–माया–अपराजिता और सिद्धि इन आठ शक्तियों से जो चक्रराज सम्पन्न हैं और गायत्री

के चौबीस अक्षर जिनके अर के सदृश हैं। वहाँ पर अशोक वृक्ष के मूल भाग में बैठ कर अपने चरण के समीपस्थ भीम और भीमाक्ष संज्ञक दो भयङ्कर पुरुषों से जो अति उग्र आकार की प्रतीत होती है। श्रीचक्रराज में विराजमान भगवान् की वह अपूर्व नृसिंह रूप मूर्ति आपके शोक को दूर फेंक दे।।९६।।

पाश्चात्याशोकपुष्पप्रकरनिपतितैः प्राप्तरागं परागैः
सन्ध्यारोचिः सगन्धैः स्वपदशशधरं प्रेक्ष्य तारानुषक्तम्।
पद्मानाबद्धकोशानिव सुरनिवहैरञ्जलीन्कल्प्यमानां-
श्चक्राधीशोऽभिनन्दन्प्रदिशतु सदृशीमुत्तमश्लोकतां वः।।९७।।

अन्वय- पाश्चात्याशोकपुष्पप्रकरनिपतितैः सन्ध्यारोचिः सगन्धैः परागैः प्राप्तरागं तारानुषक्तं स्वपदशशधरं प्रेक्ष्य आबद्धकोशान् (पद्मान्) सुरनिवहैः कल्प्यमानान्, अञ्जलीन् अभिनन्दन् चक्राधीशो वः सुदृढाम्, उत्तमश्लोकतां प्रदिशतु।।९७।।

अर्थ- यन्त्र के पृष्ठवर्ती अशोक वृक्ष के पुष्प समूह से गिरे हुए सायंकालिक लालिमा के सदृश परागों द्वारा रक्तिम वर्ण हो गये एवम् प्रणव से विशिष्ट अपने निवासस्थान चन्द्र मण्डल को देख कर देवताओं द्वारा की गई, निबद्ध पद्मकोश की तरह प्रार्थनाञ्जलि का अभिनन्दन करते हुए चक्राधीश पुरुष आप सबको लोकोत्तर यश प्रदान करें।।९७।।

रक्ताशोकस्यं वेदस्य च विहितपदं प्राप्तशाखस्य मूले-
चक्रैरस्त्रैस्तदाद्यैरपि महितचतुर्द्विश्चतुर्बाहुदण्डम्।
प्रासीनं भासमानं स्थितमपि भयतस्त्रायतां तत्त्वमेकं-
पश्चात्पूर्वत्र भागे स्फुटनरहरितामानुषं जानुषाद्वः।।९८।।

अन्वय- प्राप्तशाखस्य रक्ताशोकस्य वेदस्य च मूले विहितपदं चक्रैः, तदाद्यैः अस्त्रैः महितचतुर्द्विश्चतुर्बाहुदण्डम् पश्चात्पूर्वत्र भागे च स्फुटनरहरिता-मानुषं (नृसिंहत्वम्) प्रासीनं भासमानं एकं तत्वं वः जानुषात् भयतस्त्रायताम्।।९८।।

अर्थ- अनेक शाखा प्रशाखा युक्त रक्त अशोक तथा वेद के मूल भाग एवम् प्रणव में जो निवास करने वाले हैं। जो सुदर्शन आदि चक्र तथा पाश-अंकुश प्रभृति आयुधों को धारण करते हुए अपने चतुर्भुज तथा षोडश भुजा वाले

दिव्य विग्रह से पूजित होते हैं। तथा ऊपर–नीचे के भाग में क्रमशः सिंह और मनुष्य के विशिष्ट स्वरूप में विराज कर प्रकाशित होने वाले श्रीनृसिंह एवम् श्रीसुदर्शन रूप इन दोनों विग्रहों से विशिष्ट एकतत्त्व स्वरूप श्रीचक्राधीश भगवान् जन्म–मरण के भय से आपका परित्राण करें ।।९८।।

प्राणे दत्तप्रयाणे मुषितदृशि दृशि त्वक्तसारे शरीरे–
मत्यां व्यामोहवत्यां सतमसि मनसि व्याहते व्याहृते च ।
चक्रान्तर्वर्ति मृत्युप्रतिभयमुभयाकारचित्रं पवित्रं–
तेजस्तत्तिष्ठतां वस्त्रिदशकुलधनं त्रीक्षणं तीक्ष्णदंष्ट्रम् ।।९९।।

अन्वय– प्राणे दत्तप्रयाणे दृशि मुषितदृशि शरीरे त्यक्तसारे मत्यां व्यामोहवत्यां मनसि सतमसि व्याहते व्याहृते च । मृत्युप्रतिभयमुभयाकारचित्रं त्रिदशकुलधनं त्रीक्षणं तीक्ष्णदंष्ट्रं चक्रान्तर्वर्ति पवित्रं तत्तेजो वस्तिष्ठताम् ।।९९।।

अर्थ– प्राण प्रयाण के समय जब नेत्र की दर्शन शक्ति क्षीण हो जाती, तथा शरीर भी अत्यन्त परवश, एवम् बुद्धि विभ्रान्त बन जाती है। चित्त अन्धकार में विलीन हो जाता और वाणी भी स्खलित होने लगती है। तब उस समय, देव समूह की परम सम्पत्ति, तथा मृत्यु को भी भयभीत करने वाले, त्रिनेत्र, एवम् तीक्ष्ण दांत वाले श्रीनृसिंह और पुरुष, इन दोनों विग्रहों से विशिष्ट श्रीसुदर्शन चक्र में सञ्चरणशील वह दिव्य तेज आपके समक्ष अपने विशुद्ध रूप में प्रकट हो ।।९९।।

यस्मिन्विन्यस्य भारं विजयिनि जगतां जङ्गमस्थावराणां–
लक्ष्मीनारायणाख्यं मिथुनमनुभवत्यत्युदारान्विहारान् ।
आरोग्यं भूतिमायुः कृतमिह बहुना यद्यदास्थापदं व–
स्तत्तन्नित्यं समस्तं दिशतु स पुरुषो दिव्यहेत्यक्षवर्ती ।।१००।।

अन्वय– लक्ष्मीनारायणाख्यं मिथुनं जङ्गमस्थावराणां जगतां भारं विजयिनि यस्मिन् विनस्य, अत्युदारान् विहारान् अनुभवति । दिव्यहेत्यक्षवर्ती स पुरुषः, वः आरोग्यं भूतिम्, आयुर्दिशतु । इह बहुना कृतम् । वः, यद्यदास्थापदं तत्तत् समस्तं नित्यं दिशतु ।।१००।।

अर्थ– श्रीलक्ष्मीनारायण भगवान् का युगल विग्रह, स्थावर–जङ्गम रूप समस्त विश्व की, रक्षा शिक्षा आदि के समस्त भारों को, जिन विजेता श्रीसुदर्शन पुरुष पर निर्भर कर और स्वयं निश्चिन्त हो निरतिशय आनन्द विहार का अनुभव किया

करता है। सुदर्शन चक्र मध्यवर्ती वे दिव्य पुरुष आपके लिए आरोग्य ऐश्वर्य तथा आयुष्य प्रदान करें। सर्व शक्तिमान् उनके विषय में इतना ही कहना पर्याप्त है, कि वे आपके समस्त अभीष्ट पदार्थों को नित्यप्रति तत्क्षण प्रदान करते रहें।।१००।।

पद्यानां तत्त्वविद्याद्युमणिगिरिशविध्यङ्गसंख्याधराणा–
मर्चिष्वंगेषु नेम्यादिषु च परमतः पुंसि षड्विंशतेश्च।
सङ्घैः सौदर्शनं यः पठति कृतमिदं कूरनारायणेन–
स्तोत्रं निर्विष्टभोगो भजति स परमां चक्रसायुज्यलक्ष्मीम्।।१०१।।

।। इति श्रीकूरनारायणमुनिप्रणीतं सुदर्शनशतकं समाप्तम्।।

अन्वय– अर्चिषु नेम्यादिषु अङ्गेषु च, तत्व, विद्या, द्युमणि–गिरिश–विध्यङ्गसंख्याधराणाम्, पद्यानाम्, अतः परं पुंसि षड्विंशतेः, सङ्घैः कूरनारायणेन कृतं स्तोत्रं यः पठति स निर्विष्टभोगः परमां चक्रसायुज्यलक्ष्मीं भजति।।१०१।।

अर्थ– इस शतक के ज्वाला वर्णन में चौबीस, नेमि में चौदह, अर में बारह तथा नाभि में ग्यारह और अक्ष में तेरह पद्यों द्वारा एवम् इसके पश्चात् पुरुष वर्णन प्रसङ्ग में छब्बीस स्तुतियों के श्लोकों द्वारा श्रीकूरनारायण मुनि से प्रणीत इस सुदर्शन शतक नामक स्तोत्र का जो पाठ करते हैं, वे इस लोक के समस्त सुखों को, उपभोग कर लेने के पश्चात् चक्राधीश भगवान् के सायुज्य रूप मोक्ष सुख को प्राप्त करते हैं।।१०१।।

सद्धर्मामृतवर्षिणी हृदि सतां स्वानन्दसन्देशिनी,
नित्यं नृत्यति यस्य वक्त्रकमले वाणी शुभा मञ्जुला।
सोऽयं श्रीयुतदेवनायकमुनिर्देशे शुभे भारते,
धर्माचार्यवरोऽनिशं विजयते कल्याणकल्पद्रुमः।।१।।
शाण्डिल्यवंशकलशाम्बुधिपूर्णचन्द्रम्,
श्रीवानशैलयतिराट्पदपद्मभृङ्गम्।
श्रीवेङ्कटेशचरणाम्बुजसक्तचित्तम्,
श्रीदेवनायकगुरुं शरणं प्रपद्ये।।२।।

*****

श्रीः

विहगेन्द्रसंहितान्तर्गतं

सुदर्शनकवचम्

।। श्रीमत्प्रणतार्तिहरवरदपरब्रह्मणे नमः ।।

*****

।। श्रीसुदर्शनाय नमः ।।

अस्य श्रीसुदर्शनकवचमहामन्त्रस्य भगवानन्तर्यामी नारायण ऋषिः, अनुष्टुप् छन्दः। श्रीसुदर्शनरूपी श्रीमन्नारायणो देवता। रं बीजम्। हुं शक्तिः। फट् कीलकम्। श्रीसुदर्शप्रसादसिद्ध्यर्थं जपे विनियोगः।। शङ्खं चक्रं गदां पद्मं मुसलं खड्गमेव च। धेनुं च यमपाशं च मुद्रा होता:प्रकीर्तिताः।। पाञ्चजन्याय शङ्खाधिपतये नमः। सुदर्शनाय हेतिराजाय नमः। कौमोदक्यै गदाधिपतये नमः। पं पद्माय नमः। मुं मुसलाय नमः। नं नन्दकाय खड्गाधिपतये नमः। सुं सुरम्यै नमः। यं यमपाशाय नमः।।

–ध्यानम्–

शङ्खं शार्ङ्गं सखेटं हलपरशुगदाकुन्तपाशान्दधानं,
त्वन्यैर्वामैश्च चक्रेष्वसिमुसललसद्वज्रशूलाङ्कुशाग्नीन्।
ज्वालाकेशं किरीटं ज्वलदनलनिभं वह्निमुग्रस्थपीठं,
प्रत्यालीढं त्रिनेत्रं रिपुगणदमनं भावयेच्चक्रराजम्।।

–अथवा–

ॐ अस्य श्रीसुदर्शनकवचस्तोत्रमहामन्त्रस्याहिर्बुंध्न्यो भगवानृषिः। अनुष्टुप् छन्दः।। श्रीसुदर्शनमहाश्रीनृसिंहो देवता। सहस्रारमिति बीजम्।। सुदर्शनमिति शक्तिः। चक्रमिति कीलकम्।। मम सर्वरक्षार्थं

श्रीसुदर्शनपुरुषश्रीनृसिंहप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।। ॐ सं अचक्राय स्वाहा । अंगुष्ठाभ्यां नमः ।। ॐ हं विचक्राय स्वाहा तर्ज्जनीभ्यां नमः ।। स्त्रां सुचक्राय स्वाहा मध्यमाभ्यां नमः ।। ॐ रं सूर्यचक्राय स्वाहा अनामिकाभ्यां नमः ।। ॐ ज्वालाचक्राय स्वाहा कनिष्ठिकाभ्यां नमः ।। ॐ सुदर्शनचक्राय स्वाहा करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।। ॐ सं अचक्राय स्वाहा हृदयाय नमः ।। ॐ हं विचक्राय स्वाहा शिरसे स्वाहा ।। ॐ स्त्रां सुचक्राय स्वाहा शिखायै वषट् ।। ॐ रं सूर्य्यचक्राय स्वाहा बलाय कवचाय हुम् ।। ॐ हुं ज्वालाचक्राय स्वाहा नेत्राभ्यां वौषट् ।। ॐ फट् सुदर्शनचक्राय स्वाहा अस्त्राय फट् ।। ॐ भूर्भुवः स्वरोमिति दिग्बन्धः ।।

– अथ ध्यानम् –

शङ्खं चक्रं च चापं परशुमिषुमसिं शूलपाशाङ्कुशास्त्रं,
बिभ्राणं वज्रखेटं हलमुसलगदाकुन्तमत्युग्रदन्ष्ट्रम् ।
ज्वालाकेशं त्रिनेत्रं ज्वलदनलनिभं हारकेयूरभूषं,
ध्यायेत् षटकोणसंस्थं सकलरिपुजनप्राणसंहारचक्रम् ।।

।। इति ध्यानम् ।।

ॐ नमो भगवते सुदर्शनाय–भो भो सुदर्शन दुष्टं दारय दारय ।। दुरितं हन हन । पापं दह दह । रोगं मर्दय मर्दय । आरोग्यं कुरु कुरु ।। ॐ ॐ! ह्रां ह्रां ह्रीं ह्रीं ह्रूँ ह्रूँ फट् फट् दह दह हन हन भीषय भीषय स्वाहा ।।

मस्तकं मे सहस्रारः फालं पातु सुदर्शनः ।
भ्रुवौ मे चक्रराट् पातु नेत्रे द्वेऽर्केन्दुलोचनः ।।१।।
कर्णौ वेदस्तुतः पातु घ्राणं मे सुविभीषणः ।
महादीप्तः कपोलौ मे ओष्ठौ रुद्रवरप्रदः ।।२।।
दन्तान्पातु जगद्वन्द्यो रसनां मम सर्वदा ।
सर्वविद्यार्णवः पातु गिरं वागीश्वरो मम ।।३।।

वीरसिंहो मुखं पातु चुबुकं भक्तवत्सलः।
सर्वदा पातु कण्ठं मे मेघगम्भीरनिस्वनः ।।४।।
मम स्कन्धयुगं पातु धराभारापहारकः।
बाणासुरभुजारण्यदावाग्निः पातु मे भुजौ ।।५।।
कालनेमिशिरश्छेत्ता पातु मे कूर्परद्वयम्।
करौ दिव्यायुधः पातु नखान्वज्रनखोपमः ।।६।।
कुक्षिं पातु महाशूरः स्तनौ शत्रुनिषूदनः।
पातु मे हृदयं भक्तजनानन्दश्च सर्वदा ।।७।।
सर्वशास्त्रार्थसद्भूतिहेतुः पातूदरं मम।
वक्षः पातु महाधारो दिवि दानवमर्दनः ।।८।।
पार्श्वौ मे पातु दीनार्तः शरणागतवत्सलः।
सर्वदा पृष्ठदेशं मे देवानामभयप्रदः ।।९।।
नाभिं षट्कोणधामा मे पातु घण्टारवः कटिम्।
आदिमूलः पुमान् पातु गुह्यदेशं निरन्तरम् ।।१०।।
उरू पातु महाशूरो जानुनी भीमविक्रमः।
जङ्घे पातु महावेगो गुल्फौ पातु महाबलः ।।११।।
पादौ पातु सदा श्रीदो ब्रह्माद्यैरभिवन्दितः।
पातु पादतलद्वन्द्वं विश्वभारो निरन्तरम् ।।१२।।
सुदर्शननृसिंहो मे शरीरं पातु सर्वदा।
मम सर्वाङ्गरोमाणि ज्वालाकेशः स रक्षतु।
मम सर्वाङ्गकान्तिं वै कल्पान्ताग्निसमप्रभः ।।१३।।
अन्तर्बहिश्च मे पातु विश्वात्मा विश्वतोमुखः।
रक्षाहीनं च यत्स्थानं प्रचण्डस्तत्र रक्षतु ।।१४।।
सर्वतो दिक्षु मे पातु ज्वालाशतपरीवृतः।
त्रिनेमिः पातु मत्प्राणान्भ्रातृन्पात्वनलद्युतिः ।।१५।।

भार्यां लक्ष्मीसखः पातु पुत्रान्पातु सुदर्शनः ।
श्रीकरो मे श्रियः पातु बन्धून्पातु बलाधिकः ।।१६।।
गोपांश्चैव पशून् पातु सहस्रारधरस्सदा ।
क्षेत्रं विश्वम्भरः पातु मित्रं पात्वघनाशनः ।।१७।।
दिवारात्रौ च मां पातु अहिर्बुध्नवरप्रदः ।
षोडशोत्तुङ्गबाहुस्तु पातु मे राजसम्मुखम् ।।१८।।
वैरिविद्वेषसङ्घे तु संग्रामे शत्रुसूदनः ।
अवान्तरा अबाधाश्च त्राययेत्सार्वकालिकम् ।।१९।।
आधिव्याधिमहाव्याधिमध्ये चोपद्रवे तथा ।
अपमृत्युमहामृत्यू नाशयेच्चक्रनायकः ।।२०।।
परप्रयुक्तमन्त्राश्च यन्त्रतन्त्रविभञ्जनः ।
सुदर्शनोऽयस्माकं दुर्दशादुःखनाशनः ।।२१।।
सर्वसम्पत्प्रदाता मां चक्रराजो निरन्तरम् ।
जपं पातु जगद्वन्द्यो मनसामक्षयप्रदः ।।२२।।
प्रमादांश्चास्त्रधामासौ ज्ञानं रक्षतु सर्वदा ।
अणिमादिमहैश्वर्यं पातु साम्राज्यसिद्धिदः ।।२३।।
तिर्यज्वालाग्निरूपश्च नष्टराज्यार्थदो मम ।
राज्यं पातु सहस्रारः पादातिं पातु वाऽच्युतः ।।२४।।
चतुरङ्गबलस्तोमं रक्ष त्वं चक्रभावन ।
ज्योतिर्मयश्चक्रराज सर्वान्वरुणरक्षक ।।२५।।
अखण्डमण्डितः पातु परचक्रापहारकः ।
त्रिविक्रमश्चक्रराजः पातु धैर्य्यं सदा मम ।।२६।।
नमो दशदिशव्याप्तिकीर्तिं पातु सुदर्शनः ।
आयुर्बलं धृतिं पातु लोकत्रयभयापहः ।।२७।।
सुधाममण्डलसंविष्टो मायापञ्चसुशीतलः ।
राजद्वारे सभामध्ये पातु मां चण्डविक्रमः ।।२८।।

पूर्वे सुदर्शनः पातु आग्नेये पातु चक्रराट् ।
याम्ये रथाङ्गकः पातु त्रिनेमिः पातु नैर्ऋत्ये ।।२९।।
लोगत्रयप्रभाकारज्वालो रक्षतु पश्चिमे ।
षट्कोणः पातु वायव्ये ह्यस्त्रराजोत्तरां दिशम् ।।३०।।
ऐशान्यां चक्रराट् पातु मध्ये भूचक्रचक्रिणः ।
अनन्तादित्यसङ्काशः क्ष्मान्तरिक्षौ च पातु मे ।।३१।।
सर्वतो दिक्षु मे पातु ज्वालासाहस्रसंवृतः ।
एवम् सर्वत्र संरक्ष सर्वदा सर्वरूपवान् ।।३२।।
सकारः पृथिवी ज्ञेयो हकारो अप उच्चते ।
स्राकारो वायुरुक्तश्च रकारोऽम्बर उच्यते ।।३३।।
हुङ्कारमग्निरित्याहुः फट्कारं सूर्यरूपकम् ।
स्वाहाकारं न्यसेन्मूर्ध्नि पीतरक्तसुवर्णकम् ।।३४।।
सकारं नासिकायां तु हकारं वदने न्यसेत् ।
स्राकारं हृदये चैव सृष्टिसंहारकारणम् ।।३५।।
रकारं विन्यसेद् गुह्ये हुङ्कारं जानुदेशके ।
फकारं गुल्फदेशे तु टकारं पादयोर्न्यसेत् ।।३६।।
सर्वाणि चैव वर्णानि जप्यान्यङ्गुलिपर्वसु ।
क्षिप्रं सौदर्शनं चक्रं ज्वालामालातिभीषणम् ।।३७।।
सर्वदैत्यप्रशमनं कुरु देववराच्युत ।
सुदर्शन महाज्वाल छिन्धि छिन्धि सुवेदनाम् ।।३८।।
परयन्त्रं च तन्त्रं च छिन्धि मन्त्रौषधादिकम् ।
सुदर्शन महाचक्र गोविन्दस्य करायुध ।।३९।।
सूक्ष्माधार महावेग छिन्धि छिन्धि सुभैरव ।
छिन्धि पातं च लूतं च छिन्धि घोरं महद्विषम् ।।४०।।
इति सौदर्शनं दिव्यं कवचं सर्वकामदम् ।
[१]सर्वबाधाप्रशमनं सर्वव्याधिविनाशनम् ।।४१।।

सर्वशत्रुक्षयकरं सर्वमङ्गलदायकम् ।
त्रिसन्ध्यं पठतां नृणां सर्वदा विजयप्रदम् ।।४२।।

---

[1]सर्वपापप्रशमनं भोगमौक्षेकसाधकम् ।
प्रातरुत्थाय यो भक्त्या पठेदेतत्सदा नरः ।।४३।।
तस्य सर्वेषु कालेषु विघ्नः क्वापि न जायते ।
यक्षराक्षसवेतालभैरवाश्च विनायकाः ।।४४।।
शाकिनी डाकिनी ज्येष्ठा निद्रा बालग्रहादयः ।
भूतप्रेतपिशाचाद्या अन्ये दुष्टग्रहा अपि ।।४५।।
कवचस्यास्य जप्तारं दृष्टमात्रेण तेऽखिलाः ।
पलायन्ते यथा नागाः पक्षिराजस्य दर्शनात् ।।४६।।
अस्यायुतं पुरश्चर्यं दशांशं तिलतर्पणम् ।
हवनं तर्पणं चैव तर्पणं गन्धवारिणा ।।४७।।
पुष्पाञ्जलिर्दशांशं च मिष्ठान्नं सघृतप्लुतम् ।
[2]चतुर्विंशद्द्विजा भोज्या वैष्णवा वेदपारगाः ।
पञ्चसंस्कारसम्पन्नास्तत्तत्कार्याणि साधयेत् ।।४८।।
विन्यस्याङ्गेष्विदं धीरो युद्धार्थं योऽभिगच्छति ।
रणे जित्वाखिलाञ्छत्रून् विजयी भवति ध्रुवम् ।।४९ ।।
मन्त्रिताम्बु त्रिवारं वा पिबेत्सप्तदिनावधि ।
व्याधयः प्रविनश्यन्ति सकलाः कुक्षिसम्भवाः ।।५०।।
मुखप्रक्षालने नेत्रनासिकारोगनाशनम् ।
भीतानामभिषेकं च महाभयनिवारणम् ।।५१।।
सप्ताभिमन्त्रितानेन तुलसीमूलमृत्तिका ।
लेपान्नश्यन्ति ते रोगाः सद्यः कुष्ठादयोऽखिलाः ।।५२।।

१– सर्वपापप्रशमनं भोगमौक्षेकसाधकम् ।

२– चतुर्विंशद्द्विजा भोज्या वैष्णवा वेदपारगाः ।

ललाटे तिलकं स्त्रीणां मोहनं सर्ववश्यकृत्।
परेषां मन्त्रयन्त्राणि तन्त्राण्यपि विनाशकृत्।।५३।।

व्यालसर्पादि सर्वेषां विषापहरणं परम्।
सौवर्णे रजते वापि भूर्जे ताम्रादिकेऽपि वा।।५४।।
लिखित्वा त्वर्चयेद्भक्त्या स श्रीमान् भवति ध्रुवम्।
बहुना किमिहोक्तेन यद्यद्वाञ्छति यो नरः।
सकलं प्राप्नुयादस्य कवचस्य प्रसादतः।।५५।।
ध्वजे गजानामथ वाजिसायके शरेष्वमोघेष्वथ वीरपट्टके।
लिखेच्च चक्रं विजयेषु संयुगेष्वमोघवीर्यं जयमाप्नुयाद्ध्रुवम्।।५६।।
श्रियःप्रवृत्यै परिपूजनीयो ह्याभीष्टसिद्धिं कुरुते सुदर्शनः।
कन्याच भर्ता पुरुषो वधूश्च लभेच्च विद्यां धनधान्ययुक्ताम्।।५७।।

।। इति श्रीविहगेन्द्रसंहितायां तन्त्ररहस्ये
सुदर्शनकवचं समाप्तम्।।

*****

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१
दूरभाष - ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS